

कर्म जीवन का

मुनिश्री १०८ प्रमाणसागर

प्रकाशक
निर्ग्रन्थ फाउण्डेशन
भोपाल (मध्यप्रदेश)

कर्म जीवन का

प्रवचनकार - मुनिश्री 108 प्रमाणसागर जी महाराज

प्रस्तुति : डी. राकेश जैन एवं सिंघई जयकुमार जैन

संस्करण : द्वितीय, दिसम्बर 2012

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ फाउण्डेशन, भोपाल

प्रतियाँ : 1100

मूल्य : 22/-

मुद्रक : विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स

145, सेक्टर-एफ, इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल

फोन : 0755-2601952, 09425005624

स्वस्थमानसिकता वाले गृहस्थ के लिए पूर्वाचार्यों के द्वारा निरूपित इन कर्मों का करना सहज एवं सरल होता है। इनसे उसकी वृत्ति नियंत्रित एवं लयबद्ध रहती है। जीवन की लयबद्धता का जो दुर्लभ सुख है वह इन नियमों की सीमा में बद्ध होने पर अनुभूत किया जा सकता है।

श्रमण संस्कृति की मुख्य विचारधारा है - कर्मशील होना। श्रमाधारित होने से संभवतः इस संस्कृति का नामकरण श्रमण किया गया होगा। यह श्रम लौकिक और अलौकिक रूप से संभावित हो सकता है। किन्तु यह श्रम मात्र श्रम नहीं है, अपितु इसमें श्रद्धात्मक मनोदशा का होना अनिवार्य है। जब तक श्रद्धात्मक श्रम नहीं होता तब तक वह मात्र परिश्रम तो हो सकता किन्तु परिणामदायी हो यह आवश्यक नहीं है और बिना परिणामदायी श्रम करने की सीमा तो अन्तहीन ही होगी। जैसे जल के मन्थन से झाँक तो आता है किन्तु मक्खन निकाल पाना संभावित नहीं है।

श्रमण के श्रम का द्वितीय आधार उनका ज्ञान या विवेक भी होता है। यद्यपि दूध के मन्थन से नवनीत प्राप्त किया जाता है, किन्तु वह जल के मन्थन से कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। लेकिन यह जानना ही पर्याप्त नहीं है कि दूध से नवनीत मिलता है। अपितु दूध नहीं दही के द्वारा प्राप्त होता है, दही की भी ठीक-ठीक अवस्था होने पर नवनीत प्राप्त होता है। विकृति की दशा में नवनीत नहीं ही मिलता या कम विकृत होने पर यदि प्राप्त हो सकता है तो वह भी विकृत ही होता है।

इसी तरह श्रमण का श्रम भी परमार्थ की भावना से ओतप्रोत तथा सकारात्मक विश्वास से निर्मित होता है। गृहस्थ उसकी आरम्भिक आधार होता है। इस भूमि पर उसकी निश्चल भित्ति अवस्थित होती है। जैन परम्परा में गृहस्थों के प्रतिदिन के कर्तव्य कार्यों का भी विभाजन किया गया है। उसके ये कर्म श्रद्धा, विवेक और क्रियाशीलता के विस्तार स्वरूप ही होते हैं। देवपूजा एवं गुरुपास्ति उसकी प्रगाढ़श्रद्धा को प्रदर्शित करते हैं। स्वाध्याय एवं दान विवेकाश्रित होते हैं। तप एवं संयम स्व-परोपकार की क्रियाशीलता को निर्धारित करते हैं।

मुनिश्री प्रमाणसागर जी द्वारा गृहस्थ के षट् कर्मों पर जो चिन्तन दिया गया है वह कई मायनों में अश्रुतपूर्व व महनीय है। यद्यपि उनके प्रत्येक वचन/प्रवचन चिन्तन की गहनधारा से निःसृत होता है, जिसे आगम का आधार प्राप्त रहता है। प्रस्तुत संकलन के लगभग सभी प्रवचन महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें भी दान के विषय में दिये गये उपदेश समसामयिक एवं जनोपयोगी के साथ तार्किक भी हैं। इन जैसे निर्भीक उपदेशकों के द्वारा ही ऐसी वचनावली निःसृत हो सकती है, जो प्रचलित अनेक रूढ़ियों/परम्पराओं को निरर्थक एवं निर्जीव घोषित करने का साहस रखती हो।

अपेक्षा है कि दान के विषय में प्रचलित वर्तमान मानकों के साथ इन विचारों का तुलनात्मक व गहन विचार-विमर्श हो तभी उसके यथार्थ स्वरूप की जानकारी हासिल हो सकती है। इस प्रकार का मनन-चिन्तन ही समाज को नई दिशा प्रदान कर सकता है।

आशा है प्रस्तुत संकलन से पाठक-जन अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

इति शम्।

राकेश जैन

अनुक्रम

- | | |
|---|----|
| 1. जीवन के रूपान्तरण का विज्ञान : देवपूजा | 7 |
| 2. बलिहारी गुरु आपकी : गुरुपास्ति | 27 |
| 3. जीवन का लाइट पोस्ट : स्वाध्याय | 42 |
| 4. तृप्ति और शान्ति का मूलमंत्र : संयम | 59 |
| 5. भेदविज्ञान की बारहखड़ी : तप | 78 |
| 6. सोचो, साथ क्या जायेगा ? : दान | 93 |

देव-पूजा

यह पगडंडी पहुँचायेगी राजमार्ग तक

तीर्थंकर भगवन्तो ने दो प्रकार के धर्म का उपदेश दिया है एक है साधुधर्म व दूसरा श्रावक धर्म। साधु धर्म निवृत्ति मूलक है और श्रावक धर्म प्रवृत्ति मूलक है। साधु अधिकतर स्वरूप में रमा रहता है। गृहस्थ को संसार या सांसारिकता में उलझना पड़ता है। प्रायः हमारी यह धारणा बनी हुई है कि जीवन के कल्याण के लिए साधु बनना जरूरी है। जब हम साधु बनेंगे तब ही हमारा कल्याण होगा। गृहस्थों का तो कल्याण हो ही नहीं सकता। लगभग हर व्यक्ति के मन में इसी प्रकार की धारणा बनी हुई है। लेकिन सन्त कहते हैं यह सच है कि साधु के जीवन का कल्याण होता है लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि केवल साधु का ही कल्याण होता है - साधु का कल्याण तो होना ही है पर गृहस्थ का भी कल्याण होता है। **साधु जीवन साधना का राज मार्ग है।** मतलब यह नहीं कि गृहस्थों के लिए कोई मार्ग ही नहीं है। पगडंडी ही सही, पतली गली ही सही पर रास्ता तो है गृहस्थ यदि उस पर चलता है तो वह भी सफल हो सकता है। चले तो सफल हो सकता है बस चलना होगा इसी कारण से जैसे साधुओं के साथ धर्मशब्द को जोड़ा गया, वैसे ही गृहस्थों के साथ भी धर्म को जोड़ा गया है एक धर्म साधु धर्म है व दूसरा धर्म गृहस्थ धर्म है, गृहस्थ साक्षात् भले ही मुक्ति का भाजन नहीं बन सके पर परम्परा से यदि गृहस्थोचित कर्तव्य का पालन करता है तो वह भी मुक्ति का पात्र बन सकता है। वह अपने जीवन को व्यवस्थित बनाकर आगे चलकर अपनी आत्मा में ऐसी पात्रता ला सकता है, जिसके द्वारा वह साक्षात् मुक्ति का अधिकारी बने। गृहस्थों के लिए हमारे आचार्यों ने कुछ ऐसे मार्ग निर्देश दिये हैं जिन्हें आत्मसात् करके वे अपने जीवन को या अपनी दिनचर्या को मर्यादित बना सकते हैं और धर्म का पालन कर सकते हैं। इस बात को एक नये सिरे से प्रारम्भ कर रहा हूँ।

देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्यायः संयमः तपः।

दानं चेति गृहस्थानां, षट्कर्माणि दिने-दिने ॥

“देवपूजा, गुरुओं की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप व दान” ये ऐसे कर्म हैं जो प्रत्येक गृहस्थ को नित्य करना चाहिये। इन कर्मों के माध्यम से ही वे कर्म मुक्ति का मार्ग प्राप्त कर सकते हैं। गृहस्थ का जीवन यूँ तो पाप से लिप्त होता है लेकिन उसके द्वारा अर्जित पाप के प्रक्षालन के लिए छः कर्म हैं जो कि न केवल उसके पापों का प्रक्षालन करते हैं अपितु उसकी आत्मा में पवित्रता लाकर उसकी पात्रता को और अधिक मजबूत बनाते हैं।

देवपूजा : जीवन रूपान्तरण का मानसरोवर

सबसे पहला कर्तव्य है - **देव-पूजा**। प्रत्येक गृहस्थ का यह मुख्य धर्म है आचार्यों का कहना है -

दानं पूया मुखं सावयधम्मे ण सावया हुंति तेण विणा।

ज्ञाणञ्जयणं मुखं जइ धम्मे तेण विणा तहा सोवि ॥ रयणसार

दान और पूजा ये श्रावक धर्म के मुख्य अंग हैं। **दान और पूजा के अभाव में श्रावक - श्रावक नहीं कहलाता जबकि मुनि जीवन में ध्यान और अध्ययन की प्रमुखता है।** ध्यान और अध्ययन के अभाव में मुनि-मुनि नहीं रह पाता। दान और पूजा श्रावकत्व की कसौटी है, ध्यान और अध्ययन मुनित्व की जड़। इसलिए प्रत्येक श्रावक को नित्य देव पूजा की प्रेरणा दी गई है। आखिर इस देव पूजा की इतनी महत्ता क्यों? दान का इतना गुणगान क्यों, बन्धुओ, इसे हम समझें, हम भगवान के दर्शन को नहीं आ रहे हैं पर हमारे मन में भगवान के प्रति अनुराग है, भक्ति है अपने-अपने तरीके से हम भगवान को अपनी आस्था का अर्घ्य किसी न किसी रूप में चढ़ा ही लेते हैं। आइए हम समझें, यह पूजा है क्या? जो रोज पूजा करते हैं, उसका महत्त्व क्या है? उसका स्वरूप क्या है? यह पूजा हमें कैसे करना चाहिये। एक बात ध्यान रखें क्रियाओं को हम क्रियाओं की भांति ना करें-पहले उसका स्वरूप समझें, उसके प्रयोजन के बारे में जानें, उसकी प्रक्रिया को अपनायें, तब हमें उसकी प्रक्रिया का पूरा लाभ मिलता है। ऊपरी तौर पर जब हम किसी क्रिया में संलग्न हो जाते हैं तो हमारी वह क्रिया अधूरी रह जाती है। उसका जो परिणाम मिलना चाहिये वह नहीं मिल पाता। यही कारण है कि आज बहुत से

ऐसे लोग हैं जो या तो भगवान की पूजा से ही दूर रहते हैं या फिर भगवान की पूजा करते हुए उसके प्रसाद से वंचित रह जाते हैं। सन्त कहते हैं ये दोनों हमारे जीवन की कमजोरियां हैं। इन्हें दूर करना चाहिये। भगवान, भगवान के स्वरूप व उनकी पूजा की उपादेयता को हम समझें और उनकी उपादेय बुद्धि के साथ पूजा के स्वरूप को जानकर समुचित प्रक्रिया को अपनायें, तो ये पूजा हमारे जीवन के रूपान्तरण का आधार बन सकती है। अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि देव पूजा एक क्रिया काण्ड है। ध्यान रखना, **यह क्रिया काण्ड तो है पर वह रूपान्तरण का आधार भी है।** ऐसी आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसमें हम परमात्मा को आधार बनाकर उनके गुणों को आत्मसात् करने की पात्रता पा सकते हैं। पूजा में गहन आध्यात्मिकता छिपी हुई है लेकिन हम उसके आध्यात्मिक पहलू को नजर अंदाज कर देते हैं क्योंकि हम भगवान की पूजा एक आध्यात्मिक भक्त बनकर के नहीं करते, केवल पारम्परिक श्रद्धालु बनकर के करते हैं। सन्त कहते हैं चाहे पारम्परिक श्रद्धालु हो या आध्यात्मिक श्रद्धालु यह पूजा दोनों करते हैं। पूजा का सच्चा फल केवल परम्परा से पूजा करने वाले भर को नहीं मिलता, फल तो उन्हें मिलता है जो पूज्य के स्वरूप को जानते हैं। आध्यात्मिक अनुराग से प्रेरित होकर वे पूजा करते हैं। जिस क्षण तुम्हारी आत्मा में आत्मिक अनुराग की अभिव्यक्ति होगी तुम्हारी पूजा तुम्हें पूज्य तक पहुंचा देगी। पूज्य तक पहुंचाना तो बहुत उथली बात है आध्यात्मिक अनुराग से भरे हुए व्यक्ति की पूजा उसे स्वयं ही पूज्य बना देती है। पूजा के माध्यम से ही पूज्यता को उपलब्ध किया जा सकता है। बशर्ते हम उसके स्वरूप को समझें। जब तक क्रिया को हम केवल क्रिया के रूप में करेंगे वह क्रिया केवल ऊपरी क्रिया बनकर रह जायेगी और उसे हम कोरे क्रियाकाण्ड या कर्मकाण्ड की संज्ञा दे देंगे। लेकिन जब हम उस क्रिया के आन्तरिक स्वरूप को समझकर आत्मसात् करेंगे तो वही हमारे रूपान्तरण की प्रक्रिया बन जायेगी। वह विज्ञान बन जाती है। बन्धुओ ! पूजा में अध्यात्म छिपा है और इसी आध्यात्मिकता के कारण आचार्यों ने इसे सम्यक्त्ववर्द्धिनीक्रिया कहा है। देव पूजा वह क्रिया है जिससे हमारे सम्यक्त्व में निर्मलता आती है पूजा हमारे गुणों की अभिवृद्धि करती है हमारी जीवन शैली को परिवर्तित कर देती है। हमारे सोच को बदल देती है। उस क्रिया का नाम पूजा है। भगवान की पूजा व आराधना करने के बाद यदि हमारे सोच/

चिन्तन/जीवन शैली में कुछ परिवर्तन हो रहा है तो समझना हमने पूजा का वांछित फल प्राप्त किया है। यदि ये सब घटित नहीं हो रहा है तो समझना हमारी पूजा अधूरी है इससे हमें जो प्राप्त करना था वह प्राप्त नहीं कर पाये। देव पूजा के विषय में हम थोड़ा समझें कि पूजा एक आध्यात्मिक अनुष्ठान है केवल जड़ की ऊपरी क्रिया नहीं है। उसके मर्म को समझें और अपने जीवन को तदनुरूप ढालने का प्रयत्न करें। निश्चित रूप से हम से ज्यादा भगवान और फिर दूसरा कोई भी नहीं बन सकता। गृहस्थों के लिए अकेले पूजा ही वह सरल प्रक्रिया है जिसके बल पर वे अनादिकालीन मिथ्यात्व की जड़ों को उखाड़ने में समर्थ हो सकते हैं। पाप संताप को नष्ट करने की पात्रता पूजा में है। पूजा की बड़ी महिमा है, आचार्यों ने लिखा है कि जिनेन्द्र भगवान की पूजा तो बहुत दूर की बात है दर्शन मात्र से निधत्ति और निकाचित कर्म कलाप का क्षय हो सकता है। **“जिणबिंब-दंसणेण णिधत्तिणिकाचिदस्सवि मिच्छत्तादिकम्मक्खयदंसणादो”** वे पाप जो एकदम वज्र पटल की तरह हमारी आत्मा में चिपके रहते हैं परमात्मा की आराधना से क्षीण व नष्ट हो सकते हैं। भगवान की आराधना का महत्त्व देखा है ?

करें दर्शन मूर्तिमान के

समस्त पाप भगवान के दर्शन मात्र से नष्ट हो सकते हैं बशर्ते हम ठीक से दर्शन करें। पूजन करें तो ठीक ढंग से। यह पूजा की महिमा है। पूजा की महिमा बताते हुये **आचार्य वीरसेन महाराज कहते हैं जिणिं दपूजणदंसणवंदणणमंसणेहिं बहुकम्मपदेसाणणिज्जरुवलंभादो। अर्थात् भगवान की पूजा से, दर्शन से, वन्दना से, नमस्कार से बहुत कर्मों का क्षय देखा जाता है।** मैं तो आप सब से कहता हूँ कितना सरल मार्ग है कि व्रत, संयम, तप व कोई अनुष्ठान नहीं कर सकते तो कोई बात नहीं दान व त्याग नहीं कर सकते तो कोई बात नहीं, चलेगा, ये सब नहीं करते तो भी चलेगा पर अपने आपको भगवान के चरणों में अर्पित कर दो तुम्हारे पाप कट जायेंगे, तुम्हारे कर्मों का क्षय होगा। इसमें तो कुछ नहीं लगता। इतना भी नहीं कर सकते तो फिर आपको तो भगवान ही बचाये। महाराज पूजा तो करते हैं लेकिन यह सब घटता हुआ नहीं दिखता है। घटता हुआ तब दिखेगा जब हम सच्चे मन से पूजा करेंगे। कई बार

भगवान के चरणों में आकर के भी हम भगवान के पुजारी नहीं बन पाते, क्योंकि हमारा मन इधर-उधर भटकता रहता है। जब तक हम भगवान की सन्निधि को महसूस नहीं करते तबतक हमारे भीतर का भक्त जागरूक नहीं होता। जब तक हमारे भीतर की भक्ति अभिव्यक्त नहीं होती तब तक हमारी पूजा अधूरी होती है। इसके लिए आवश्यक है कि जब हम भगवान के मंदिर में पूजा आरम्भ करें तो केवल मूर्ति को नहीं देखें वहाँ विराजे मूर्तिमान की छवि को निहारने का प्रयत्न करें। हम मूर्ति को देखते हैं मूर्तिमान को देखने का प्रयत्न नहीं करते। हम मूर्ति को पूजते हैं, मूर्तिमान गौण हो जाता है। **सन्त कहते हैं - मूर्ति पूज्य नहीं है मूर्तिमान पूज्य है।** मंदिर में जिस देवता को प्रतिष्ठित किया है वह केवल मूर्ति नहीं है। अतः मूर्तिमान को पहचानने की कोशिश करो। जिस क्षण तुम्हारी दृष्टि उस मूर्तिमान पर केन्द्रित होगी तब तुम्हारे सामने भगवान खड़े होंगे। तुम्हारे भीतर का भक्त अपने आप प्रकट हो जायेगा। तुम्हारी पूजा के लिए ज्यादा कुछ करने या बताने की जरूरत नहीं होगी। मूर्तिमान को सामने रखकर की गई पूजा ही सच्ची व सार्थक होती है।

वन्दे तद्गुणलब्धये

पूजा के विषय में जानने के लिए चार बातों पर गंभीरता से विचारने की आवश्यकता है -1. पूज्य, 2. पूजक, 3. पूजा 4. और पूजा का फल।

हमारे पूज्य कौन हैं ? हम किसको पूजते हैं ? वस्तुतः हमारी पूजा का मूल ध्येय शांति या वीतरागता की प्राप्ति है। हम जानते हैं कि हमारा मन जब भी अशांत होता है तो वह हमारे मन में नित प्रति उत्पन्न होने वाली विकल्प तरंगों के कारण अशान्त होता है। इच्छाओं के कारण, राग-द्वेष के कारण तथा चित्त में पलने वाले विकारों के कारण भी हमारा मन अशांत होता है और हम इसी अशांति को दूर करना चाहते हैं। यह अशांति धन और पैसा, पद-प्रतिष्ठा, सत्ता तथा साम्रज्य से दूर नहीं हो सकती। इस बात को हमने जाना है क्योंकि इनके माध्यम से हमारे चित्त की अशांति तो निरन्तर बढ़ती ही जाती है। जिनके पास वैभव, शक्ति, सत्ता व सम्पदा है वे ये सब चीजें तो दे सकते हैं पर शांति उनके पास नहीं मिल सकती। शांति की उपलब्धि तो शांति के देवता के माध्यम से

ही हो सकती है। वह शांति केवल उनके पास ही हो सकती है, जो वीतरागता को उपलब्ध किये हुये हैं। **बन्धुओ ! हमारी उपासना का मूल उद्देश्य वीतरागता की प्राप्ति है।** हमारे जो पूज्य हैं वे वीतराग ही हैं। उन्होंने अपने सारे विकारों को, इच्छाओं को व तमाम दुर्बलताओं को जीत लिया। केवल इसी भाव से हम अपने भगवान की आराधना करते हैं। हम नाम उन्हें चाहे जो भी दे दें पर हमारे आराध्य व पूज्य वही हैं जो वीतरागी हैं। जिसके अंतरंग में किसी भी प्रकार के राग-द्वेष का सद्भाव है वह हमारी पूज्यता का पात्र नहीं है क्योंकि राग तो एक प्रकार की मानवीय दुर्बलता है उससे हम अपनी दुर्बलता को दूर नहीं कर सकते। ध्यान रखना जिसे हम अपना आदर्श बना रहे हैं, अगर उसमें भी वे ही बुराईयां हैं जिन्हें हम दूर करना चाहते हैं तो वह आदर्श हमारी बुराईयों के निर्मूलन का प्रेरक नहीं बन सकता। आदर्श तो केवल वही होना चाहिये जो बुराईयों से मुक्त है जिनके सम्पर्क व जिनके सान्निध्य में जाने के बाद बुराईयों को दूर करने का मन में संकल्प उत्पन्न होता है, वैसी प्रेरणा हमारे अन्दर जागृत होती है।

बन्धुओ ! हमारे पूज्य केवल वीतराग हैं इस बात को सदैव ध्यान रखें। वीतराग की पूजा करेंगे तो हमारे अन्दर के वीतराग भावों का पोषण होगा और सरागी की पूजा करेंगे तो सराग भावों का पोषण होगा। ध्यान रखना कि हम अतीत में रागी की पूजा/उपासना करते रहे हैं। अब भाग्य से वीतराग का सान्निध्य मिला है तो वीतराग की अर्चा, वीतराग की आराधना करो, जिससे अन्दर का व्यामोह दूर हो सके और हम अपने जीवन का कल्याण करने में समर्थ हो सकें।

जहाँ तक पूज्य की बात आती है तो जो वीतराग हैं, जिन्होंने अपने कर्म कालुष्य को नष्ट कर दिया है, जिसने अपने विकारों को दूर कर दिया है वही पूज्य है और पूज्य के गुणों की आराधना का नाम पूजा है। वीतराग के चरणों में जाकर यदि हमारी दृष्टि उन पर केन्द्रित होती है तो ही पूजा होती है अन्यथा मात्र क्रिया बनकर रह जाती है। **‘वन्दे तद्गुणलब्धये’ हे भगवन् ! मैं आपकी पूजा कर रहा हूँ इसलिए नहीं कि आप महान् हैं, बल्कि इसलिये कि मैं आपके गुणों को प्राप्त करना चाहता हूँ। आपने अपने तमाम अवगुणों को नष्ट कर दिया है आप गुणों की खान हैं आपमें**

दोषों का निशान ही नहीं है। आपके पास मैं इसलिये आया हूँ कि आपके गुणों के माध्यम से मैं अपने अंतरंग के गुणों को पहचान सकूँ और अपने चित्त के दोष समूह को दूर करने में समर्थ हो सकूँ। केवल इसी भावना से पूजा के लिये आया हूँ। बन्धुओ! केवल ऊपरी तौर पर हम पूजा करेंगे तो पूजा सार्थक नहीं होगी। जैन परम्परा में भगवान की पूजा को तो महत्त्व दिया है लेकिन उसका उद्देश्य गुणों की आराधना है। हमारे यहाँ एक बहुत बड़े दार्शनिक आचार्य हुए हैं समन्तभद्र, जो महान दार्शनिक थे। उन्होंने भगवान की परीक्षा ली। भक्त की परीक्षा तो हर कोई लेता है पर भगवान की परीक्षा लेने वाले जैन परम्परा में एक मात्र हुए हैं **आचार्य समन्तभद्र**, उन्होंने भगवान की परीक्षा के रूप में एक स्तुति की है उसका नाम है **आप्तमीमांसा**। भगवान के चरणों में जाकर वे खड़े होते हैं और उनसे पूछते हैं भगवन्! आप क्या समझते हो? मैं आपके चरणों में किसलिए आया हूँ? इसलिए कि आपके चारों तरफ देवों का समूह आ रहा है अथवा आपका समवसरण आया है इसलिए मैं आया हूँ? नहीं, यह तो इन्द्र व जादूगर भी कर सकता है। मैं इससे प्रभावित होकर आपके पास नहीं आया हूँ। अथवा आपका यह ठाठ-बाट दिखाई पड़ रहा है इसलिए मैं आपकी पूजा के लिए आया हूँ? तो आप भ्रम में ना रहो ठाठ-बाट तो संसार में राजा-महाराजाओं के भी देखे जाते हैं। आप आकाश में गमन कर रहे हैं, क्या मैं इसलिए आपकी पूजा करने आया हूँ? नहीं। यह भी कोई जादूई करामात बन सकती है। मैं इन सब कारणों से आपकी पूजा करने नहीं आया हूँ। तो भगवान पूछते हैं समन्तभद्र बता तू किसलिए आया है? वे कहते हैं **आपके सब दोष व आवरणों का अभाव हो गया है, आपने अज्ञान, दोष व दुर्बलताओं को नष्ट कर दिया है। आपके अन्दर के स्वाभाविक गुण प्रकट हो गये हैं, मैं आपके गुणों से आकृष्ट होकर आपके गुणों की आराधना के लिए आया हूँ।** भगवान के गुणों से आकृष्ट हो, उनके गुणों की आराधना का भाव अपने मन में भरो। पर जैसा कि मैंने बताया है, यह तभी संभव होगा जब हम भगवान के स्वरूप को अपने सामने रखेंगे। हमारी दृष्टि मूर्ति पर नहीं, मूर्तिमान पर केन्द्रित हो। मूर्तिमान पर जब हम दृष्टि को केन्द्रित करना शुरू करेंगे तभी हमारी पूजा सार्थक होगी। बन्धुओ, पूजा में बड़ा गहरा अर्थ छिपा हुआ है। वस्तुतः पूजा कोरी क्रिया नहीं, आत्मानुसन्धान की एक प्रक्रिया है। जिसके बल

पर हम जीवन का रूपान्तरण कर सकते हैं। गहरा आध्यात्मिक सार तत्त्व प्राप्त कर सकते हैं।

हैं पूजा के अर्थ अनेक

पूजा शब्द को आप थोड़ा गहराई से समझें। यह शब्द पूर्ण धातु से बना है केवल पूजा के “पू” शब्द का अर्थ आप सबको बताना चाहता हूँ, इसको समझने से हमारा जीवन पवित्र हो जायेगा। **“पू” का अर्थ होता है पवित्र होना, मांजना, उपाय ढूँढना, फटकना व परिमार्जन करना।** अनेक अर्थ ‘पू’ के बताये गये हैं, हम थोड़ा सा देखें। जब हम भगवान की पूजा करने के लिए जाते हैं तो क्या करते हैं? पूजा! पूजा वह क्रिया है जो हमारे जीवन को पवित्र बना देती है। पवित्रता का नाम पूजा है यदि पूजा करने के बाद हमारे अंतरंग में पवित्रता नहीं आती, हमारे भावों में निर्मलता नहीं आती तो समझना पूजा अधूरी है। पूजा का उद्देश्य चित्त को पवित्र व निर्मल बनाने का होना चाहिए। पूजा वह प्रक्रिया है जो हमारे चित्त को निर्मल व पवित्र बनाने में समर्थ होती है। यदि हम इसके अर्थ को समझें और अपने पूज्य के स्वरूप को जानें तो हमारी पूजा चित्त को पवित्र बनाये बिना नहीं रहेगी। बन्धुओ, आप लोग रोज भगवान की पूजा व आराधना करते हो तो अपने मन को टटोल कर देखना यह पूजा तुम्हारी आत्मा को पवित्र बना पा रही है या नहीं? कल की अपेक्षा आज मेरे जीवन में कुछ पवित्रता बढ़ पाई है या नहीं? ऐसी पवित्रता बढ़ रही है तो समझना हमने पूजा का फल पा लिया है। यदि पवित्रता नहीं है तो हमारी पूजा फलवान नहीं बन पा रही है।

पूजा का फल : मोक्षमहाफलप्राप्तये

सन्त कहते हैं - अपनी पूजा को फलवान बनाओ। निष्फल मत होने दो। पवित्र बनाओ। किसको बनाना है पवित्र? भगवान को? हम सबरे से अभिषेक करते हैं इसलिए कि भगवान की धूल हट जाए? कुछ लोग ऐसा कहते हैं हम भगवान का अभिषेक तो इसलिए करते हैं कि भगवान के ऊपर धूल चढ़ जाती है न इसलिए उसको दूर करें। धन्य है उनकी बुद्धि को। भगवान पर धूल थोड़ी ना चढ़ेगी, भगवान तो पतित पावन हैं। **आचार्य माघनन्दि जी कहते हैं हम जान रहे हैं कि आप कर्म बन्धन से मुक्त**

हैं, फिर भी मैं भक्तिवश आपके अभिषेक पूजन के लिए आ रहा हूँ। इसलिए नहीं कि आपके कर्ममल को झाड़ूँ। अरे ! जिनके कर्ममल झड़ गये हैं उन्हें क्या झाड़ना ? फिर भी मैं आपके ऊपर यह शुद्ध जल से अभिषेक कर रहा हूँ, अपने कर्म मल का प्रक्षालन करने के लिए। यह जल की धारा छोड़ रहा हूँ, अपने आपको व अपनी आत्मा को पवित्र बनाने के लिए।

प्रभु पतित-पावन मैं अपावन, शरण आयो चरण जी।

हे भगवन् ! आप तो पतित-पावन हो, अपावन तो मैं हूँ। आपकी इस पूजा, भक्ति, सेवा से मुझमें कुछ पवित्रता आ जाए, केवल इसी कामना से आपके चरणों में आया हूँ। पूजा का उद्देश्य है पवित्र होना। ये पूजा हमारे जीवन में पवित्रता लाती है।

पूजा मन का मंजन है

पूजा का दूसरा अर्थ उपाय ढूँढना है। किसका उपाय ढूँढना ? वीतरागता का उपाय ढूँढना, कल्याण का उपाय ढूँढना। जो चाहते हैं उनको उसका उपाय उनके पास ही मिलेगा। एक सेठ के पास जाओगे तो दुकानदारी का उपाय मिलेगा। एक वकील के पास जाओगे तो केस-मुकदमा का मार्ग सीखोगे। एक इंजीनियर के पास जाओगे तो वो टेक्नीकल परामर्श देगा। भगवान के पास जाओगे तो केवल वीतरागता का उपाय मिलता है। वस्तुतः हम जितनी देर भगवान की पूजा करते हैं उन्हीं क्षणों में एक मार्ग मिलता है। आगम से हम अपने वीतराग स्वरूप को प्राप्त करने का उपाय जानते हैं, वह उपाय सीखें। **पूजा का अर्थ है - मांजना।** किसको मांजते हैं ? घर में आप लोग रोज बर्तन मांजते हैं। जो साफ-सुथरे अलमारी में सजे रहते हैं उनको क्या ? नहीं ! हम भगवान के चरणों में आकर अपने मन को मांजते हैं। **भगवान की पूजन मन का मंजन है।** क्योंकि हमारे मन में जन्म-जन्मांतर से गन्दगी व विकृति भरी हुई है उसका परिमार्जन व परिशोधन करने के लिए भगवान के चरणों में आते हैं। कोशिश करें अपने मन को बुहारने की, साफ करने की, मन का मंजन करने की, तभी हमारे जीवन का कल्याण संभव है।

सार-सार को गहि रहै, थोथा देई उड़ाय

“पू” का एक अर्थ फटकना है। फटकने में आप लोग क्या करते हैं ? सार को रखते हैं असार को फेंक देते हैं ? वस्तुतः पूजा की प्रक्रिया में हम अपने तन-मन को

फटकते हैं। सार-असार की पहचान करते हैं। सार का संचय करते हैं, असार को उड़ाने की कोशिश करते हैं। लेकिन बन्धुओ ये वही कर सकता है जिसमें विवेक है। यदि माँ की नकल करते-करते एक बच्चा बैठ जाए तो वह सार को फटक देगा असार को सूप में रखेगा। सच में बच्चों जैसी गलतियाँ तो हम नहीं करते पर अपने मन को देखोगे तो ऐसा लगेगा कि आज भी हमारी प्रवृत्ति बचकानी बनी हुई है हम सार की उपेक्षा कर रहे हैं और असार का आलिंगन।

जब तक ऐसी वृत्ति बनी रहेगी हमारे जीवन का उद्धार नहीं हो सकता है। **‘पू’ का एक अर्थ ‘विवेक’ होता है।** हम विवेक जागृत करें। यदि हमारी आत्मा में विवेक जागृत होता है तो हमारा कल्याण हो जाता है। बन्धुओ ! इन्हीं कारणों से पूजा को सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया के अंतर्गत लिया गया है। ध्यान रखना, पूजा आराधना करने मात्र से केवल पुण्य की प्राप्ति नहीं होती है। आचार्य कहते हैं जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से जन्म-जन्मान्तर के कर्म क्षीण हो जाते हैं। कर्म निर्जरा का यह अचूक आधार है। इसे कभी भूलना मत। पूजा के स्वरूप को जानकर यदि हम पूजा करते हैं तो ये सब चीजें अपने आप प्राप्त हो जाती हैं। बन्धुओ ! पूज्य, पूजक, पूजा व पूजा के फल की जो बात मैं आप सबसे कर रहा हूँ इसमें पूजा के महत्त्व को समझें। उस वीतराग की पूजा करें जिससे हमारा जीवन धन्य होगा। वस्तुतः देवपूजा हमारे लिए वह आलम्बन है जिसके माध्यम से हम अपने भीतर की पात्रता को प्रकट कर सकते हैं।

एक बात ध्यान रखना है **पूजा हमारा साध्य नहीं, साध्य तो उस पूज्यता को प्राप्त करना है।**

अहंकार का विसर्जन ही है, अहोभाव की प्राप्ति

उपासना हमारा ध्येय नहीं, उपास्य हमारा ध्येय है। लेकिन क्या करें, यह तभी संभव है जब उपासक बन करके हम उपास्य तक पहुंचेंगे। बिना उपासना के उपास्य तक पहुंच नहीं सकते। भगवान के गुणों की आराधना से ही हम अपने भीतर की भगवत्ता को प्रकट कर सकते हैं।

ये अंधकार अपने मन में कभी मत पाल लेना कि मुझमें और भगवान में कोई

तात्त्विक अन्तर नहीं है। मुझे तो भगवान बनना है बिल्कुल भगवान ही बनना। **भगवान बनने का निषेध नहीं है, भगवान बनना ही हमारा ध्येय है, लेकिन ध्यान रखना बेटा बने बिना बाप नहीं बन सकते। पहले बेटा बनोगे तब बाप बन सकते हो। पहले भक्त बनोगे तब ही भगवान बनोगे।** यह कहना बड़ा अहंकार पूर्ण है कि भक्त नहीं भगवान बनेंगे। भक्त बनकर ही भगवान बनोगे। यह ध्येय अपना होना ही चाहिये। जो लोग सीधे भक्त नहीं भगवान बनने की बात करते हैं वे बेटा नहीं बाप बनना चाहते हैं। पैदा ही नहीं हुए, तो तुम पैदा करने वाले कैसे बनोगे? यह प्रक्रिया है इस प्रक्रिया को अपनाकर हम चलेंगे तभी हमारा जीवन धन्य होगा। कोरी बातों से हम अपने जीवन का कल्याण नहीं कर सकते हैं। वस्तुतः हम शास्त्रों के रहस्य को गहराई से समझने की कोशिश करें। अपने जीवन को उसी अनुरूप ढालने का प्रयत्न करें तब हमारे जीवन में कुछ उपलब्धि प्राप्त होगी।

ध्यान रखना साधना के प्रथम चरण में भगवान के प्रति समर्पण बहुत जरूरी है। भगवान के चरणों में समर्पित हुए बिना आज तक एक भी आत्मा भगवत्ता को प्राप्त नहीं हुई। साधारण प्राणियों की बात जाने दीजिये। साक्षात् तीर्थंकरों को भी भगवान का स्मरण करना पड़ा है। जब वे दीक्षित होते हैं तो कहते हैं 'नमः सिद्धेभ्यः'। जब तक हम किसी उच्च को अपना आदर्श नहीं बना लेते तब तक अंतरंग में समर्पण नहीं जागता और जब तक समर्पण नहीं जागता तब तक भीतर का मिथ्यात्व नष्ट नहीं होता। आगम का यह कथन है कि मुक्ति की प्राप्ति के लिये क्षायिक सम्यग्दर्शन जरूरी है। क्षायिक सम्यग्दर्शन अपने आप नहीं हो जाता। शुद्ध-बुद्ध आत्मतत्त्व का ध्यान करते-करते आज तक किसी को क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। क्षायिक सम्यग्दर्शन किसको होता है? **क्षायिक सम्यग्दर्शन उसको ही होता है जो किसी केवली या श्रुत केवली के पाद मूल में समर्पित होकर आत्मा की आराधना करता है।** जब तक तुम शिष्य या भक्त नहीं बनोगे अथवा समर्पित नहीं होंगे, तब तक तुम अपनी मुक्ति की पात्रता को प्रकट नहीं कर सकते। ध्यान रखना, समर्पित होना बहुत जरूरी है तभी हम पूजा का फल प्राप्त कर सकते हैं।

दर्पण सिर्फ दिखाता चेहरा

एक बार एक सज्जन ने मुझसे कहा कि जब हमारे भगवान कुछ देते-लेते नहीं तब हम भगवान की पूजा क्यों करें? भगवान की पूजा का मतलब तो तब है जब भगवान कुछ लें, कुछ दें। जबकि आप कहते हैं हमारे भगवान वीतरागी हैं, न कुछ लेते हैं, न देते हैं, तो फिर हम उनकी पूजा क्यों करें? मैंने कहा ठीक कहते हो आप। आप दर्पण के सामने जाते हैं? बोले रोज जाते हैं। मैंने कहा क्यों? बोले अपना चेहरा देखने जाते हैं। मैंने कहा क्यों? बोले इसलिए कि चेहरे में कोई कालिख तो नहीं! दर्पण आपके चेहरे की कालिख को पोंछता है क्या? नहीं, दर्पण में हम कालिख को देखते हैं और पोंछ लेते हैं और अपने चेहरे को साफ बना लेते हैं। आप सिर्फ इसीलिए दर्पण को देखते हैं। दर्पण आपसे न कुछ लेता है न कुछ देता है। यही स्थिति हमारे भगवान की है, जो दर्पण की तरह हैं, न कुछ लेते हैं, न कुछ देते हैं। जिनकी वीतराग छवि में हम अपनी आत्मा की सभी कालिख को देख लेते हैं और हम स्वयं उनके माध्यम से उसे प्रक्षालित कर लेते हैं। भगवान की भूमिका बस इतनी सी है। भगवान लेते व देते भले कुछ नहीं हैं, पर अपने स्वरूप का बोध करा देते हैं। जिस क्षण ऐसे स्वरूप का बोध हो जाये उसी क्षण हमारा जीवन धन्य हो सकता है। उस स्वरूप बोध की स्थिति को हम प्राप्त करने की कोशिश करें।

अभिषेक : आगम के आलोक में

बन्धुओ! पूज्य के स्वरूप को समझें। पूजा के रूप व प्रक्रिया की मैं आपसे पुनः चर्चा करूंगा - पूज्य, पूजक, पूजा व पूजा का फल ये चारों बातें जिस दिन हमारे मानस में समा जायेंगी हम इस पूजा को बहुत सार्थक बना सकते हैं। पूजा के 5 अंग बताये गये हैं। आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण, पूजन व विसर्जन। पूजन की भूमिका है अभिषेक। अभिषेक पूर्वक पूजा ही जैन परम्परा में मान्य है। एक बात का ध्यान रखियेगा कई बार लोग ऐसा कह देते हैं, कि अभिषेक की क्रिया आगमानुकूल नहीं है यह बिल्कुल भ्रान्त व मिथ्या धारणा है। उनके चक्कर में मत पड़ना। इस बात को इस तरह से जोर देकर कहा जाता है कि भगवान का प्रक्षाल किया जाता है जन्म के समय भगवान का

कर्मजीवन का - का : का है नागम कृष्ण काणाकृत जपं कि जप प्रादि है तादि कर्मजीवन
। तादि कि

कर्मजीवन क प्रकर २ में मागद की प्रतीति तर्क इमम कि सिद्धि में मंगल स
.1 - है मादु इच्छु कि सिद्धि कृष्ण, है किच्छु कि नागम प्रा मंगली, है माद नक्षत्र त
। कर्मजीवन की .२ कर्मजीवनप्रा .4, कर्मजीवनप्रा .६, कर्मजीवन .९ कर्मजीवन

है किदि लीकृ कि सिद्धि सिद्धि में मंगल प्रा । है तादि त सिद्धि - **कर्मजीवन**
इलाद प्र मंगली कृष्ण सिद्धि प्रा है तादि मंगली मंगल तकाद सिद्धि प्रा कि
। है कर्मजीवन जप । है तादि मंगल सिद्धि कर्तक

कि कर्म मंगली-मंगल में काणाकृत मंगल क प्रकृति- **कर्मजीवन**
। है कर्मजीवन जप है तादि कर्मजीवन

है तादि क है किदि लीकृ प्र मंगली प्रा प्रकृति प्रा - **कर्मजीवन**
। कर्मजीवन

तागद नागम कि सिद्धि मंगली प्रा प्रा कर्तक प्रा - **कर्मजीवन**
। है तादि कर्मजीवन जप प्रा है

त नागम कृष्ण कि काणाकृत जपं नामधारी में प्रतीति - **कर्मजीवन**
। है कर्मजीवन कि है तादि कर्मजीवन

क सिद्धि कि मंगल मंगली, किदि प्रतीति क सिद्धि लू प्र तादि मंगली
मंगली कि लू । मंगली मंगली प्रा कि मंगली मंगली । है तादि मंगली प्रतीति
प्रतीति । है तादि मंगली में मंगली मंगली कि कर्मजीवन । है मंगली में मंगली
। है किदि कर्मजीवन प्रादि इदि में प्रादि

। :मागदकृष्णमंगलः :मंगली, त कर्तक सिद्धि

२1 .३ .किदि ॥ :मंगलीमंगलीमंगलीमंगलीमंगली, :मंगलीमंगलीमंगलीमंगली

इदि की है किदि मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली
- है किदि कर्मजीवन प्रादि इदि मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली मंगली

अभिषेकप्रेक्षणिका क्रीडनसंगीतनाटकालोकगृहः ।

शिल्पिविकल्पितकल्पनसंकल्पातीतकल्पनैः समुपेतैः ॥ नन्दी. भ. 22

नन्दीश्वर द्वीप में एक स्थल है जो अभिषेक प्रेक्षणिका के रूप में बनाया गया है ।
जहाँ खड़े होकर देव-देवियाँ अभिषेक देखते हैं ।

तिलोयपण्णत्ती में जिनाभिषेक का अनेक स्थलों पर उल्लेख है । ऐसा लिखा
गया है कि कोई भी देव जब उत्पन्न होता है तब उसका देवाभिषेक होता है तथा उसे
वस्त्राभूषणों व अलंकारों से सजाया जाता है । फिर देव अपने विमान में जिनेन्द्र भगवान
का जो मंदिर है वहाँ जाकर पूजा व अभिषेक करता है । आचार्य यतिवृषभ ने अपने
तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ में भी भक्तिपूर्वक अभिषेक और पूजा का वर्णन किया है । जहाँ भी
पूजा की चर्चा आती है वहाँ पहले अभिषेक और उसके बाद पूजन की चर्चा है । वहाँ एक
बात का और भी उल्लेख किया गया है । सम्यग्दृष्टि देव हों या मिथ्यादृष्टि, दोनों ही प्रकार
के देव अभिषेक व पूजन करते हैं । सम्यग्दृष्टि वीतराग भगवान मानकर और मिथ्यादृष्टि
कुल देवता मानकर । इसका अपना एक महत्त्व है । वैज्ञानिक भी कहते हैं जब हम भगवान
के अग्र जल की धारा छोड़ते हैं जब उससे हमारे अन्तरंग की शुभभावनायें जन्म लेती हैं ।
मंत्रोच्चार जो हमारे द्वारा किया जाता है वह हमारे लिये गुणात्मक प्रभाव छोड़ते हैं । ऐसा
एक व्यक्ति ने प्रयोग किया कि अपने यहां लगाये गये पौधे में से एक में अभिषेक का जल
डाला तो उसकी वृद्धि बहुत तेजी से हुई । एक में सामान्य जल डाला तो उसकी वृद्धि
मंदगति से हुई । इन भावनाओं व क्रियाओं का बड़ा असर पड़ता है । इनके महत्त्व को
जानें । इसके अनुरूप अपने आपको आगे बढ़ायें ।

पूजन की शास्त्रीय प्रक्रिया

दूसरे चरण में आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण । ये क्या हैं ? कई बार लोग
कहते हैं महाराज, इन तीनों का औचित्य क्या है ? एक बार एक ब्रह्मचारी ने पूछा
महाराज - आप चौके में जाओ और चौके वाले आपकी आह्वान, स्थापना न करें तो
आप क्या करोगे ? तब मैंने कहा - मैं अपनी स्थापना दूसरे चौके में कर लूंगा । यह क्रिया
है । जब हम पूजन करते हैं तब हम मंदिर में मूर्ति की पूजा नहीं करते हैं, समवसरण में

विराजमान भगवान की पूजा करते हैं और इन्द्र बनकर अपने देव परिकर को आहूत करके करते हैं। इस आह्वान में दो प्रकार की क्रियायें एक साथ चलती हैं। एक तो भगवान का अपने हृदय में स्थापन, जिससे हमारे और भगवान के बीच तादात्म्य की स्थापना हो और उसके साथ वषट्, संवोषट् और ठः ठः मंत्र की स्थापना हो। ये केवल देवताओं को आमंत्रण करने वाले माया मंत्र हैं। जो मंत्र शास्त्र को जानते हैं वे इस बात को जानते हैं। सन्निधिकरण का मतलब है यह साक्षात् समवशरण है, साक्षात् वीतराग देव हैं, मैं देव हूँ। इस तरह अपने और भगवान के साथ एक रूपता होने का नाम सन्निधिकरण है। जब इन्द्र बनकर हम समवशरण में आते हैं तो अकेले कैसे आयेगे ? सब देवी-देवताओं को साथ बुलाकर भगवान की पूजा में सम्मिलित होते हैं। सब मिलकर पूजा करते हैं। यह इसका अर्थ है। इस अर्थ को समझकर आप-आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण करें, तो इसमें कुछ भी गलत नहीं है। फिर होता है पूजन। अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा करें। आचार्य वीरसेन स्वामी से पूँछा गया - पूजन किसे कहते हैं। उन्होंने कहा - जल, गन्ध आदि के माध्यम से अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति का नाम पूजा है। वस्तुतः भाव पूजा तो हमारे अन्दर का प्रकाश है। हम अपनी भक्ति को जिस रूप में प्रकट कर रहे हैं वही हमारी भावपूजा है। पूजा के साथ हमें कुछ आलम्बन भी लेना पड़ता है तो हम पूजा के साथ कुछ छन्द बोलते हैं और उसके लिए कुछ सामग्री चढ़ाते हैं वही प्रथा पूजा है। पूजा में द्रव्य की प्रमुखता नहीं है भाव की प्रमुखता है। लेकिन हम लोग ऐसे अज्ञानी हैं कि द्रव्य के आग्रह में उलझ जाते हैं और भाव पक्ष गौण कर देते हैं। पूजा पढ़ते समय पीठिका में क्या पढ़ते हैं ?

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,

भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः ।

आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,

भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥ पूजापीठिका - 4

हे भगवन् ! मैं शुद्ध द्रव्य लेकर आपके पास आया हूँ जैसा आगम में बताया है, लेकिन किसलिए ? भावों की उत्कृष्ट प्राप्ति के लिए ही यह द्रव्य लेकर आया हूँ। प्रदर्शन

करना मेरा ध्येय नहीं है अपितु भावों को विशुद्ध बनाना ही मेरा ध्येय है। इसलिए मैं कहता हूँ पूजा करते समय द्रव्य का आग्रह मत रखो। द्रव्य के गीत न गाकर भगवान के गीत गाओ, द्रव्य में तो रात-दिन लगे हुए हो। विशुद्धि जब प्रगट हो जाए तो हमारा जीवन धन्य हो जावेगा। अरे **उद्धार का आधार भाव है।**

यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्यः । -कल्याणमंदिर 38

भावशून्य क्रिया कभी फलवान नहीं होती है। फिर हम पूजा में अष्ट द्रव्य का आलम्बन लेते हैं। अष्टद्रव्य से पूजा करते हैं। चढ़ा देते हैं जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा। इतना फास्ट चलते हैं कि पता ही नहीं चलता है कब मंत्र बोला गया और कब अर्घ्य चढ़ाया गया ! यहां तक कि चढ़ाते नहीं छींटा देते हैं। छींटा नहीं, विनय के साथ अर्पित कीजिये। इसके साथ जुड़ी हुई भावना को समझिये।

भावयात्रा : जल से फल पाने तक की

जल - हम जल किसलिये चढ़ाते हैं ? प्रभु आप परम-पावन शीतल स्वभाव को प्राप्त हुये हैं। आपमें अद्भुत शीतलता है मेरी आत्मा तो अत्यन्त संतप्त है, मैं चाहता हूँ कि आप जैसी शीतलता पाने के लिए जल की तरह खुद आपके चरणों में अर्पित हो जाऊँ और अपनी आत्मा की शाश्वत शीतलता को प्राप्त करूँ। इस भाव से जल अर्पण करें। जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा। यह मत सोच लेना कि हम भगवान के चरणों में जल डाल देंगे तो मेरे जन्म-जरा-मृत्यु चले जायेंगे। यह भाव हो कि मैं आपके चरणों में जल से पूजा इसलिए कर रहा हूँ कि जन्म-जरा-मृत्यु का नाश हो। मैं अपने स्वभाव को प्राप्त करूँ।

चन्दन - चन्दन शीतलता का प्रतीक माना जाता है। संसार में जो भी दाह संतप्त होते हैं वे अपने शरीर में चन्दन लगाकर कुछ पल के लिए शांति का अनुभव करते हैं। प्रभु अपने निर्मल स्वरूप को प्राप्त हैं, आपका चित्त तो चन्दन से ज्यादा शांत हो गया है। मेरा चित्त अशांत है। मैं अपनी अशांति को दूर करने के लिए, तन में जब दाह बढ़ती है तो चन्दन लगा लेता हूँ। यह चन्दन मेरे मन की दाह को दूर नहीं कर पायेगा इसलिए मैं आपके चरणों में यह चन्दन चढ़ा रहा हूँ।

अक्षत - अक्षत क्यों चढ़ाते हैं ? अक्षत एक ऐसा अन्न है जिसकी पुनः अंकुरोत्पत्ति नहीं होती। धान को बोया जाता है, अक्षत को नहीं। यह हमारी शुद्ध आत्मा के स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। जैसे धान है उस पर आवरण है तब तक अंकुरण है। यानी जन्म मरण है। हमारे ऊपर जब तक कर्म का आवरण है तब तक जन्म मरण है। धान का आवरण हटने पर अखंडित शुभ्र आकृति वाला अक्षत प्रकट होता है। कर्म के आवरण के बाद जो हमारा स्वरूप होता है वह शुद्ध हो जाता है आपने उस अक्षत पद को प्राप्त किया है। मेरा जीवन तो खंड-खंड है। मैं अपने जीवन को अखंडित बनाने के लिए आपके चरणों में अक्षत अर्पित कर रहा हूँ।

पुष्प - प्रभु, आप काम विजेता हैं। आप त्रिलोक विजेता हैं। आपने सब प्रकार की दुर्बलताओं को दूर कर दिया है। कामदेव भी आपको देखकर थर-थर कांपता है। लेकिन क्या करें आपसे हारा हुआ वह काम हम सबको सता रहा है। मैं पुष्प केवल इस भाव से समर्पित कर रहा हूँ कि हममें ऐसी सामर्थ्य प्रकट हो कि हम कामविजेता बन सकें।

नैवेद्य - इसलिए नहीं चढ़ाते कि भगवान भूखे हैं। प्रभु मुझे जब-जब भूख लगी तब मैंने भूख मिटाने के लिए अनेक प्रकार के व्यंजन बनाकर खाये लेकिन अब तक की अनुभूति यह बताती है कि सारी जिदंगी खाते रहने के बाद भी भूखा ही हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि जिन्हें मैं खाता हूँ वे भूख नहीं मिटा सकते। प्रभु आपके चरणों में आने के बाद मुझे सारे जड़ द्रव्यों की निरर्थकता प्रतिभाषित होने लगी है। मैं नैवेद्य आपके चरणों में अर्पित कर रहा हूँ और आपसे चाहता हूँ कि जिसे एक बार पा लेने के बाद जन्म-जन्म की भूख खत्म हो जाती है और परम तृप्ति की प्राप्ति हो जाती है, बस उस परम तृप्ति की भावना मुझे प्राप्त हो इस कामना के साथ यह नैवेद्य आपके चरणों में अर्पित कर रहा हूँ।

दीप - प्रभु ! जब-जब मुझे बाहर का अहंकार दिखता है मैं दीप जलाकर अंधकार दूर कर लेता हूँ। प्रभु बाहर के अंधकार को दूर करने की विधि तो मैंने जान ली लेकिन मैं यह जान रहा हूँ कि मेरा अन्तरमन आज भी तिमिराच्छिन्न है उस अंधेरे को दूर करने की लाख कोशिश करने के बावजूद मैं उसे आज भी दूर नहीं कर पा रहा हूँ। प्रभु यह बाहर का दीप आपके चरणों में रख रहा हूँ और आपकी लौ से अपनी लौ लगाकर मैं अपने

अन्तर के दीप को प्रकाशित करना चाहता हूँ। प्रभु मुझमें ऐसी सामर्थ्य दें जिससे मेरे अन्तर की ज्योति जल उठे। और मैं अपने जीवन को सम्यक्त्व के प्रकाश से जगमग बना सकूँ। इसी भावना से आपके चरणों में यह दीप अर्पित कर रहा हूँ।

धूप - जब कभी हम अग्नि में धूप डालते हैं तो वह जलती है और उसकी सुवास फैलती है। प्रभु ये धूप जलाकर सुवास फैलाने का मेरा अभ्यास तो पुराना है। मैं हमेशा धूप खेकर सुवास फैलाता हूँ और अपनी नासिका को तृप्त करता हूँ। प्रभु यह धूप आपके चरणों में चढ़ाकर भावना भा रहा हूँ कि धूप की भांति मेरे अन्दर के कर्म-कालुष भी जल जायें और मेरी आत्मा की आंतरिक सुवास भी प्रकट हो सके। मुझे ऐसी सामर्थ्य दें। आपने अपनी कर्मकालिका को जलाकर आत्मा में पूर्ण सुवास व प्रकाश भर लिया है। मेरे अंतरंग में भी वह सुवास प्रकट हो केवल इसी भावना से आया हूँ।

फल - मैं जो कुछ भी करता हूँ उसका फल चाहता हूँ। लोक में मेरे पास बहुत सारे फल हैं, कोई चाहता है तो मैं उन्हें दे देता हूँ। आपके चरणों में आने के बाद लगता है ये फल निष्फल हैं। प्रभु मेरे पास जो फल है मैं आपको अर्पित कर रहा हूँ और आपके पास जो फल है वो मुझे प्रदान कर दो। मेरी पूजा सार्थक हो जायेगी। यही मेरी भावना व कामना है। ये भाव अंतरंग में हों तब पूजा सार्थक हो सकती है। ऐसे ही अष्ट द्रव्य से पूजा होनी चाहिये।

बन्धुओ ! पूजा में कुछ बीज मंत्रों का भी प्रयोग किया जाता है “ॐ ह्रीं अर्हं” तीन मंत्रों का ज्यादा प्रयोग होता है। ॐ मंत्र परमेष्ठी का वाचक होता है। ह्रीं 24 तीर्थंकरों का प्रतिनिधित्व करता है और अर्हं ब्रह्म का प्रतीक है। जो अर्हन्तों व परमेष्ठियों के पहले लगाते हैं। ये सारे बीजाक्षर परमेष्ठियों के लिए समर्पित हैं।

अर्घ - हम अर्घ आखिरी में चढ़ाते हैं। अर्घ का अर्थ होता है - मूल्य, कीमत या भेंट। हम भगवान के चरणों में यह तुच्छ भेंट अर्पित करते हैं, उस अनर्घ पद की कामना के लिए, उसे पाने के लिए। वह पद जो पैसे से खरीदा नहीं जा सकता। बाहर से उपलब्ध नहीं किया जा सकता। यह अर्घ उस अनर्घपद को प्राप्त करने के लिए, जो सारे द्रव्यों का संचय होता है। उस समय आप उत्तम द्रव्यों को चढ़ायें। अच्छे से चढ़ायें, पुष्प हाथ में रखें, अंगूठा नहीं दिखना चाहिये। अंगूठा भीतर होना चाहिए। पुष्पाजलि दोनों

हाथों को सटाकर खुले, ऊपर से छोड़ना चाहिए। चुटकी में मत चढ़ाओ। चुटकी भर मत चढ़ाओ। कई-कई बार लोग पूजा करते हैं तो उतनी ही द्रव्य रखते हैं कि उनके दाने गिन लो। अरे भाई! अपने भावों में दरिद्रता न रखो। यह बात सच है कि द्रव्य महत्वपूर्ण नहीं है। यदि तुम्हारे भाव उत्कृष्ट हैं और तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है तो ज्वार के दाने भी मोती बन जाते हैं। लेकिन है तो जरूर चढ़ाओ। भावों की आड़ में कृपणता का धोखा कतई मत करना आजकल लोग ऐसा ही करते हैं। कहते हैं हमारी तो भाव शुद्धि है।

एक बार एक सज्जन को आहार दान के लिए बोला गया तो बोले हम तो अनुमोदना करते हैं। हमने कहा- सुनो, अनुमोदना तो उनके लिए है जो नहीं दे सकते। जैसे कि विकलांग हैं, मूक हैं, असमर्थ हैं, पशु हैं, पक्षी हैं उनके लिए अनुमोदना है। अनुमोदना उनके लिए नहीं है जो समर्थ होकर के भी नहीं देते हैं। उनके लिए तो केवल बहाना है। बहाना बनाने वाले का कभी उद्धार नहीं हो सकता।

बन्धुओ! मैं आप सबसे कहता हूँ आपके पास समय कम है तो केवल एक पूजा करो पर भाव से करो। शताब्दी एक्सप्रेस मत चलाओ। कई-कई बार तो इतनी फास्ट पूजा करते हैं कि कुछ का कुछ बोल देते हैं। एक बार एक अम्माजी मंदिर में निर्वाणकाण्ड पढ़ रही थीं, बोलीं - दो बलभद्र "मुफ्त" में गये। अरे भैया ऐसा काम करोगे तो तुम्हारी सारी क्रियायें ही मुफ्त में चली जायेंगी। सावधानी रखो। भाव प्रत्यय का ध्येय होना चाहिये तब काम ठीक होता है।

कामना विश्वकल्याण की

फिर बाद में जयमाला पढ़ते हैं उसे भाव-पूर्वक पढ़ें। अंत में शांतिपाठ व विसर्जन। इसके पीछे गहरा अर्थ छिपा है। जैन पूजापद्धति द्वारा पूजा करने वाला व्यक्ति अपने लिए भगवान से कुछ नहीं मांगता। वह भगवान से केवल यही चाहता है कि लोक में शान्ति हो। शांतिपाठ में आप क्या पढ़ते हो? मेरे घर में शांति हो? नहीं- सारी प्रजा को शांति प्राप्त हो।

होवे सारी प्रजा को सुख बलयुत हो धर्म धारी नरेशा।

होवे वर्षा समय पै तिल भर न रहे व्याधियों का अंदेशा ॥ शान्तिपाठ

यह बड़ी ही उदात्त भावना है, पूरे मनोयोग से इसे पढ़ना चाहिए। पर प्रायः देखने में आता है कि शान्तिपाठ ज्यादा अशान्ति से होता है। पूरी पूजा तो शान्ति से कर लेते हैं पर शान्तिपाठ में बड़ी हड़बड़ी होती है। अरे भैया! शान्तिपाठ तो शान्ति से करो। यह तो पूरी पूजा का निचोड़ है। यह शान्तिपाठ पूरे दिन की शान्ति का निमित्त बनेगा।

इस प्रकार विसर्जन पाठ के पूर्व पढ़ी जाने वाली सात भावनाएँ/प्रार्थनाएँ भी पूर्ण मनोयोग से करना चाहिए। जो आप पढ़ते ही हैं -

**शास्त्रों का हो पठन सुखदा लाभ सत्संगति का,
सद्वृत्तों का सुजस कहके दोष ढाकूँ सभी का।
बोलूँ प्यारे वचन हितके आपका रूप ध्याऊँ,
तो लों सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जो लों न पाऊँ ॥**

इसमें ये सात प्रार्थनाएँ हैं जो जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। जो व्यक्ति यदि हम इन्हें आत्मसात् कर लें तो हमारा जीवन निश्चित रूप से महान हो जावे।

इस प्रकार अभिषेक से विसर्जन तक की सम्पूर्ण प्रक्रिया में गहरी आध्यात्मिक भावना जुड़ी है। हम इसे आत्मसात् कर अपने जीवन का रूपान्तरण कर सकते हैं।



गुरुपास्ति

गुरु ही हैं प्रकाश के वाहक

सघन अन्धकार में यदि कहीं से प्रकाश की एक छोटी सी भी किरण मिले तो वह हमारा पथ प्रदर्शन कर देती है। उसके आलोक में हम मार्ग को देखकर अपने मुकाम तक पहुंच सकते हैं। जिस व्यक्ति ने अन्धकार को भोगा है उसे प्रकाश और प्रकाश की किरण दिखाने वाले की महिमा मालूम है। यह सच है कि अन्धकार से निजात पाने के लिये केवल प्रकाश ही सहारा है। बल्कि प्रकाश के माध्यम से ही हम अंधकार से मुक्ति पा सकते हैं। बाहर के अन्धकार को दूर करने के लिये हमारे पास स्रोत हैं, और हम उनका उपयोग कर अन्धकार को दूर भगा देते हैं।

संत कहते हैं कि बाहर का अन्धकार तो ज्यादा से ज्यादा 12 घंटे का होता है और उसे दूर करने के लिये ज्यादा कुछ प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती। हमारे पास पर्याप्त साधन हैं। हम थोड़े से प्रयास से उस अंधकार को दूर करने में समर्थ हो जाते हैं मगर हमारे भीतर का जो अंधकार है वह बड़ा प्रगाढ़ अन्धकार है, जिसमें हमें कुछ सूझता नहीं। हर व्यक्ति के चित्त में अज्ञान, मोह, मिथ्यात्व का सघन अंधकार छाया है। उस अन्धकार में हमारी बुद्धि भी अंधी हो चली है। ऐसे घने अंधकार के आवरण में ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले यदि कोई हैं तो वे हैं हमारे सदगुरु, जो अपने ज्ञान के प्रकाश से हमारे भीतर के तमस को छांटते हैं और हमारे भीतर सम्यक्त्व की रोशनी जगाते हैं। उन गुरु की भूमिका मोक्षमार्ग में बड़ी महत्वपूर्ण है। इसलिये हम कहते हैं -

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ - मंगलाचरण

जो हमें रास्ता दिखायें, मार्ग दिखायें, पथ दें, जो हमारे भीतर के अंधकार को दूर करें उनका नाम है गुरु और बिना गुरु के हम अपने आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत नहीं कर सकते हैं।

गुरु में समाये हैं सारे देव

संत कहते हैं, उसी व्यक्ति का आध्यात्मिक जीवन शुरू हो पाता है जिस व्यक्ति के जीवन में गुरु का योग बनता है। कहते हैं कि बिना गुरु के जीवन शुरू नहीं। जिसका कोई गुरु नहीं उसका जीवन शुरू नहीं। बिना गुरु के मार्ग दर्शन के, बिना गुरु के हस्तावलम्बन के हमारे जीवन के उद्धार की शुरुआत नहीं हो सकती। भारत की संस्कृति में गुरु को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है और कहा है -

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुः साक्षात्परमब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

लोक में ब्रह्मा को महान् माना गया है, विष्णु को महत्त्व दिया गया, महेश को भी उच्च स्थान दिया गया है, लेकिन संत कहते हैं गुरु तो तीनों से ऊपर हैं। ब्रह्मा जो हमारे सृजेता हैं, विष्णु जो हमारे पालक हैं और महेश जो हमारे संहारक हैं, ये तीनों अलग-अलग विभूतियों से अलंकृत हैं। ये अलग-अलग तीन हैं लेकिन गुरु के अंदर इन तीनों का रूप एक साथ समाहित है। चूँकि गुरु हमारे नवजीवन का निर्माण करते हैं इसलिए गुरु ब्रह्मा हैं। वे हमें पाप से बचाकर सत्पथ पर लगाते हैं इसलिए गुरु विष्णु हैं और वे हमारी सारी कुप्रवृत्तियों का नाश करते हैं, इसलिए वे महेश भी हैं। इस प्रकार एक ही गुरु में तीनों के रूप समाहित हैं। यही कारण है कि हमारी संस्कृति में गुरु को उन सब से श्रेष्ठ बताया है और हमारी जैन परम्परा में तो गुरु का सर्वोच्च स्थान निरूपित करते हुए उन्हें पंच परमेष्ठियों में स्थान दिया गया है। ये कहा गया है कि बिना सच्चे देव, शास्त्र और गुरु के आलम्बन के हमारे जीवन का उद्धार सम्भव नहीं है। सच्चा धर्मात्मा या सम्यग्दृष्टि वही है जो देव, शास्त्र और गुरु के चरणों में पूर्णतया समर्पित है। देव और शास्त्र का भी उतना ही महत्त्व है जितना गुरु का।

आज के युग में जो लाभ हम देव शास्त्र से नहीं ले सकते। वह लाभ हम सदगुरु से ले सकते हैं। देव हमें मूक प्रेरणा देते हैं। उनकी प्रेरणा मुखर नहीं होती क्योंकि आज उनका साक्षात्कार नहीं है। हमने देवों की प्रतिमाओं को मन्दिर में भगवान के रूप

में प्रतिष्ठित किया है और उनके माध्यम से हम कुछ मार्गदर्शन ले पाते हैं पर यह भी गुरुओं की ही कृपा है कि उन्होंने देवों के अभाव में हमें देवत्व की प्रतिष्ठा का मार्ग बताया है। सदगुरु के प्रभाव से ही किसी पाषाण में भगवान की प्रतिष्ठा हो पाती है और हम उनके दर्शन और साच्चिध्य का सौभाग्य अर्जित करते हैं। यदि गुरुओं ने यह मार्ग नहीं बताया होता, यह प्रतिष्ठा विधि नहीं बताई होती और गुरुओं के माध्यम से प्रतिमा में यह प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की गई होती, तो आज हम देव दर्शन का जो सौभाग्य अर्जित कर रहे हैं, वह नहीं ले पाते। भगवान की मुद्रा से हम वह सब तो लाभ ले सकते हैं पर भगवान की प्रेरणा मूक होती है। वहाँ से हमें मार्ग के प्रति श्रद्धान तो उत्पन्न होता है लेकिन चलने का साहस और संकल्प नहीं जग पाता। शास्त्र हमें जीवन के कल्याण का मार्ग बताते हैं, आत्मोन्नति के जो सूत्र हैं वो सब शास्त्र में समाहित हैं, लेकिन वो सब मूक हैं। वे कुछ बोलते नहीं। उनकी स्थिति तो रास्ते में गड़े मील के पत्थर की तरह है, जो केवल संकेत दे सकता है, कि यह रास्ता इधर जाता है। शास्त्र के माध्यम से केवल संकेत मिलता है, चलने का सामर्थ्य नहीं, साहस नहीं। हमने जान लिया कि रास्ता उस ओर जाता है लेकिन जानने मात्र से हम रास्ते पर चलने का साहस नहीं जुटा पाते।

गुरु बिन ज्ञान नहीं मिलता

कल्पना करिये कि आप कहीं भटक गये हैं और काफी भटकने के बाद आपको अपना रास्ता मिला और आप देख रहे हैं कि आपका गन्तव्य इस स्थान से इतनी दूर पर है। पर आप आगे बढ़ नहीं पा रहे हैं। हिम्मत नहीं जुटा पा रहे हैं। सोच रहे हैं कि पता नहीं यह रास्ता आगे कैसा है ? कहीं दुर्गम घाटी तो नहीं, नदी नाले तो नहीं पड़ते हैं, घना जंगल है, जंगली जानवरों का आतंक तो नहीं, चोर लुटेरों का बसेरा तो नहीं ? पता नहीं यह रास्ता कहाँ जाता है ? उसी उधेड़बुन में आप खड़े हैं रास्ता जान लेने के बाद भी उस रास्ते पर चलने का साहस जागृत नहीं हो पाता। अनेक प्रकार की कुशंकाएँ मन में जन्म भी ले रही हैं। इसी बीच आपका कोई चिरपरिचित आदमी उधर से गुजरा। क्यों जी यहाँ कैसे ? अमुक गांव जाना है, कभी यहाँ से गया नहीं, पता नहीं रास्ता कैसा है ? अरे भैया रास्ता तो बहुत अच्छा है। मैं इसके चप्पे-चप्पे से परिचित हूँ। रास्ते में पड़ने वाले गांव

के लोग बहुत सभ्य और सरल हैं। मुझे भी उसी तरफ चलना है। चाहो तो तुम मेरे साथ हो लो। इसके बाद हमारे कदम सहज ही उस ओर बढ़ जायेंगे। इसका कारण क्या है ? जिस रास्ते पर लोग आते-जाते हैं उस रास्ते पर चलने में संकोच नहीं होता। जो रास्ता सुनसान होता है उस पर चलने का साहस नहीं होता। शास्त्र के माध्यम से हम सन्मार्ग को जान लेते हैं देव के माध्यम से हम सन्मार्ग का श्रद्धान तो कर लेते हैं पर उस मार्ग पर चलने का साहस नहीं होता। उस मार्ग पर चलूँ तो कैसे चलूँ ? कहीं कोई दुर्घटना तो नहीं हो जायेगी ? मन में जब शंका और सन्देह जागृत होता है तो गुरु कहते हैं कि मुझे देखो और चल पड़ो। जैसे मैं चल रहा हूँ वैसे ही तुम भी चल पड़ो। इस रास्ते में कहीं कोई बाधा नहीं, निर्बाध रूप से तुम इस पर चल सकते हो। और गुरु को देखकर इस मार्ग में चलने की प्रेरणा अपने आप जागृत हो जाती है यह गुरु की भूमिका है। जिनको देखने मात्र से जिनकी मुद्रा मात्र से हमें सन्मार्ग का बोध प्राप्त होता है। हम रोज स्तुति में पढ़ते हैं।

जग की नश्वरता का सच्चा दिग्दर्श कराने वाला है।

यहाँ मुख बिना खोले ही उपदेश मिलता है यह गुरु की भूमिका है। बिना गुरु के हमारा मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता है। यह गुरु की गरिमा है, गौरव है। गुरु को सर्वोच्च स्थान दिया है। यदि हम शास्त्र को ऐसे पढ़ें तो हमारे पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता लेकिन गुरु के मुख से पढ़ने पर सुगम हो जाता है। शास्त्र को अगम समुद्र की तरह कहा गया है। समुद्र का जल खारा होता है उस पानी से अगर नहा लें तो खुजली हो जाती है और पीने में खारापन होता है, लेकिन उसी समुद्र के जल को सूर्य अपने प्रचण्ड ताप के माध्यम से वाष्पीकरण कर पुनः बादल के माध्यम से बरसाता है तो वह तृप्ति व आह्लाद जनक हो जाता है। हम प्रेम से उसका पान करते हैं। संत कहते हैं कि यही स्थिति शास्त्र की है। शास्त्र अगम समुद्र की तरह है। उसमें यदि तुम डायरेक्ट डूबोगे तो हो सकता है कि तुम फंस जाओ, उलझ जाओ लेकिन उसी शास्त्र की वाणी को सदगुरु जब अपने प्रभाव रूप सूर्य के माध्यम से वाष्पीकरण कर प्रवचन के माध्यम से बरसाते हैं तो वह आसान हो जाता है। आह्लाद जनक हो जाता है। यह गुरु की भूमिका है।

गुरु करते शिष्य को अपने सम

जैसे खेवटिया के बगैर नाव पार नहीं हो सकती, वैसे ही सदगुरु के मार्गदर्शन के बिना हम इस भवसागर से पार नहीं हो सकते हैं। गुरु तो पूर्णिमा के चांद हैं, जो हमारे अन्दर ज्ञान का प्रकाश फैलाते हैं। उन गुरु का सान्निध्य पाकर हम भी पूनम का चांद बन सकते हैं। गुरु पूनम का चांद हैं पर वह हमें दूज का चांद बनाते हैं। वह हमारे अंदर के अमावस के अज्ञान को दूर कर दूज का चांद बनाते हैं और कहते हैं कि तू एक बार दूज का चांद बन जायेगा तो पूर्णिमा का चांद तो स्वयं बन जायेगा। एक बार तेरी शुरुआत हो गयी तो परिपूर्णता तो स्वयं हो जायेगी। उसे कोई रोक नहीं सकता है वे केवल बदी को मिटा कर सुदी करते हैं इसके बाद तुम्हारी बिगड़ी तो अपने आप सुधर जायेगी। अभी हम बदी में जीने के आदी हैं। सदगुरु में परम करुणा/दया होती है जिससे वे हमारी दृष्टि और धारणा को परिवर्तित कर बदी को सुदी में बदल देते हैं और जिस तरह दूज के चांद का आविर्भाव होता है हमारे आत्मगुणों की एक-एक कला अपने आप बढ़ती है और पूनम का चांद प्रकट हो जाता है। उस तरफ अपनी दृष्टि होनी चाहिये। इसलिये सदगृहस्थ के प्रमुख कर्तव्यों में वह दूसरे स्थान पर रखा गया। देवपूजा फिर गुरुपास्ति। गुरु की उपासना हमारा महत्वपूर्ण कर्तव्य है। बगैर गुरु की उपासना के हम अपने जीवन का उत्थान नहीं कर सकते। क्योंकि चिराग को जलाये बिना अंधेरे को दूर नहीं किया जा सकता। गुरु को प्रकाश का पुंज बताया गया। उसके उगते ही अज्ञान का साम्राज्य नष्ट हो जाता है। सूर्य के उगते ही सारी प्रकृति उसका अभिनन्दन करती है। सूर्य के उगते ही सारी प्रकृति में हर्ष छा जाता है। दुनिया में किसी को भी सूर्य के उगने से तकलीफ नहीं होती। केवल एक ही प्राणी है जिसे सूर्य के उगने के बाद तकलीफ होती है और दुनिया उसे उल्लू कहती है। उससे अभागा इस दुनिया में कोई नहीं है। जो प्रकाश के उपासक हैं, पुजारी हैं वे हमेशा सूर्य का अभिनन्दन करते हैं। सदगुरु की यही परम्परा है।

गुरु शब्द का शास्त्रीय अर्थ

भारत की संस्कृति में गुरु शब्द गढ़ा गया है। बाकी दुनिया में गाइड/गॉड/टीचर तो हैं पर गुरु नहीं। गुरु शब्द अपने आप में बड़ा ही अर्थपूर्ण शब्द है। यह 'गु' और

'रु' के मेल से बना है। गु-अर्थात् गूढ़ अंधकार और रु अर्थात् रोशनी। जो हमें सघन अंधकार से प्रकाश की ओर कर दें उनका नाम सदगुरु है। जो हमारे अज्ञान के तमस को दूर कर दे, जो सत्पथ पर चलने की प्रेरणा दे, जो सन्मार्ग पर चलने के लिये साहस से भर दे उनका नाम सदगुरु है। उनकी महिमा अपरम्पार होती है। गुरु शब्द का अगर वर्ण विश्लेषण करें तो उसमें 'ग' 'उ' 'र' 'उ' यह चार वर्ण हैं। चार अक्षर हैं।

ग = जो गंभीर हैं।

उ = जो उदार हैं।

र = जो रहस्य के;

उ= उद्घाटक हैं।

उनका नाम गुरु है जो साधना की गहराइयों को छू चुके हैं। जिनका हृदय उदार है, जो शिष्य की खामियों को तो दूर करते हैं पर अंदर से अपना उदार भाव भी उस पर लुटाते रहते हैं और जो आध्यात्मिकता के गूढ़ रहस्य का भी उद्घाटन करते हैं वे ही गुरु हैं।

गुरु ज्ञान, गुरु पारखी, गुरु उदार गंभीर।

औ रहस्य उद्घाटक गुरु, गुरु प्रभु की तस्वीर ॥

गुरु अनेक पर सदगुरु एक, केवल एक

गुरु की मुद्रा में प्रभु की तस्वीर होती है। इस रहस्य को जो समझता है वही सदगुरु का सच्चा लाभ ले पाता है। गुरु की बड़ी कृपा है जो अकिंचन को महान बनाते हैं। हम सबका जीवन तो मिट्टी की भांति है लेकिन गुरु कुम्हार की तरह हमारे जीवन से जुड़ते हैं और इस अकिंचन माटी को मंगल कलश का रूप दे देते हैं। शिष्य यदि पत्थर है तो गुरु उस पत्थर को गढ़कर उसमें भगवान का रूप तराश देते हैं। गुरु की यह भूमिका है। हमारा जीवन अकिंचन है। हम पत्थर हैं तो गुरु शिल्पी बनकर हमें कलश बना देते हैं। हम तन्तु हैं तो गुरु जुलाहा बनकर उसका कपड़ा, चादर बना देते हैं, जो ओढ़ने के काम आ जाता है। तन्तु का अपना कोई उपयोग नहीं, मूल्य नहीं, पर जुलाहा की कृपा से

वह उपयोगशून्य तन्तु भी सुन्दर चादर का रूप धारण कर लेता है। यह गुरु की महिमा है। इसे जो जानता है वह सदैव गुरु के चरणों में श्रद्धावनत रहता है और गुरु के प्रभाव से अपने जीवनोंत्थान का सौभाग्य अर्जित करता है। आप भी गुरु के महत्त्व को समझें और गुरु के साक्षिध्व्य को पाने की चेष्टा करें। गुरु कैसे मिलते हैं? लोक में अनेक गुरु होते हैं - एक कुल गुरु, एक शिक्षा गुरु और एक होते हैं सदगुरु जिन्हें हम धर्मगुरु भी कहते हैं। कुलगुरु वे हैं जो कुलाचार के प्रति दृढ़ करते हैं जो हमें हमारे कुल की मर्यादा को सुरक्षित रखने की प्रेरणा देते हैं। जिनके साक्षिध्व्य में जाकर हम अपने पतनोन्मुख जीवन को व्यवस्था पूर्ण बनाये रखने की शिक्षा पाते हैं। जो हमें पढ़ाते लिखाते हैं वे शिक्षा गुरु हैं। ये दोनों तो फिर भी बार-बार मिल जायेंगे लेकिन सदगुरु बार-बार नहीं मिल पायेंगे। **सदगुरु तो अलबेला होता है।** सदगुरु वे हैं जो तुम्हारे अंदर आध्यात्मिक ज्ञान की पिपासा उत्पन्न कर दें। जो तुम्हें कल्याण के मार्ग में अग्रसर कर दें। जो तुम्हारे अंदर आध्यात्मिक ज्योति जगा दें। ऐसे सदगुरु का साक्षिध्व्य जिन्हें मिलता है वे धन्य होते हैं। सदगुरु तो बहुत सुलभ होते हैं, बशर्ते हम अच्छे शिष्य बन पाएं। कई-कई बार ऐसा होता है कि सदगुरु तो मिल जाते हैं पर हम अपने अंदर शिष्यत्व प्रकट न कर पाने के कारण उनकी कृपा प्रसाद से वंचित रह जाते हैं।

समर्पण बुद्धि का नहीं, हृदय का

जब तक हमारे हृदय लोक में शिष्यत्व का आविर्भाव नहीं होता तब तक हम गुरु के दर्शन नहीं कर सकते। शिष्य बनना जरूरी है और **कोई व्यक्ति शिष्य तभी बनता है, जब वह अपने भीतर के अहंकार को विसर्जित करता है।** गुरु को अपने हृदय में सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है। जिनेन्द्र वर्णी एक बहुत बड़े विद्वान मनीषी साधक हुए। उन्होंने अपने जीवन में बहुत बड़े कार्य किये। “जिनेन्द्र सिद्धांत कोश (चार भाग)” जैसे महान ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने जीवन भर खूब साधना की। वे खोजी, इंजीनियर थे। वैज्ञानिक सोच लेकर वे धर्म की आराधना करते थे। सन् 1980 में उन्होंने आचार्य महाराज के खजुराहो में दर्शन किये। वे 5 दिन तक महाराज श्री के साथ रहे और

केवल आचार्य महाराज की मुद्रा में कुछ खोजते रहे। उसके बाद वे सागर की वाचना में आये और 5 माह तक वहां उपस्थित रहे। सामान्य चर्चा होती पर आगे की कोई बात नहीं होती। एक साधारण श्रद्धालु और एक निर्ग्रन्थ गुरु की तरह उनका सम्बन्ध था। वे साधना में अक्सर मौन रहते। वे बड़े विद्वान थे। जब और सब विद्वान चुप रह जाते और उनसे पूछा जाता तो वह अपनी तरफ से समाधान देते। ज्ञान की पराकाष्ठा थी उनमें, वे ज्ञान की मूर्ति थे। एक सच्चे निःस्पृह साधक थे। सागर की वाचना पूर्ण होने के बाद नवम्बर माह में वे आचार्य श्री के पास मुक्तागिरी पहुंचे और आचार्य महाराज के पास पहुँचकर रोने लगे। आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। वे कहने लगे कि गुरुवर अपने जीवन में मैंने सब कुछ किया पर मेरे जीवन में बहुत बड़ी कमी थी, जिसके पीछे मुझे लगता है कि मैंने अपने जीवन में सब कुछ करने के बाद भी कुछ नहीं किया। आचार्य महाराज मौन पूर्वक सब कुछ सुनते रहे। उन्होंने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि मेरे जीवन में कमी यह थी कि आज तक मैं कभी भी किसी को अपना गुरु नहीं बना पाया। आज मैं शिष्यत्व प्रकट करता हूँ। आप मुझे गुरु के रूप में अपना वरदहस्त प्रदान करें। उन्होंने बहुत ईमानदारी से यह बात कही कि मैंने सदगुरु किसी को नहीं बनाया। ध्यान रखना धर्म गुरु तो बहुत होते हैं। पर सदगुरु एक होता है। जिसके समक्ष हम अपना आध्यात्मिक मार्गदर्शन लेते हैं। फिर उन्होंने समर्पण किया, आचार्य श्री से समाधि का मार्ग निर्देशन लिया और आगे चलकर सन् 1983 में ईसरी में समाधिसाधना हुई क्षुलुक सिद्धान्तसागर के रूप में। यह मार्ग होता है आध्यात्मिक विकास का। जब तक बुद्धि तत्त्व हावी है तब तक शिष्यत्व प्रकट नहीं होता। **शिष्यत्व प्रकट होता है समर्पण से और समर्पण बुद्धि नहीं वरन् हृदय करता है।** इसीलिये गुरु के चरणों में आकर कुछ पाना चाहते हो तो समर्पण की भाषा सीखो। बुद्धिवाद को उतारकर रखो क्योंकि बुद्धि विवेक को उलझाने वाली है। वह तुम्हें केवल उलझाकर रख देगी। उससे तुम कुछ प्राप्त नहीं कर सकोगे। अपने भीतर शिष्यत्व को प्रकट कर लेना ही गुरु की कृपा का प्रसाद पाना है और जो यह पा लेते हैं वह विरले ही होते हैं। गुरु के महत्त्व को जानकर गुरु की ऐसी आराधना/उपासना करना।

गुरु की उपासना का तरीका अलग

कैसे करना गुरु की उपासना ? गुरु की खूब सेवा करना, हाथ पांव दबाना, उनको रोज-रोज आहार देना उनको रिझाना यह गुरु की उपासना नहीं है, यह तो बहुत उथली बातें हैं। गुरु की उपासना का मतलब गुरु के गुणों की आराधना है, गुरु को रिझाना नहीं गुरु के गुणों पर रिझ जाने का ही मतलब गुरु की उपासना है। परंतु आज लोग गुरु को रिझाने का मतलब ही गुरु की उपासना समझते हैं। संत कहते हैं कि गुरु को रिझाओ मत, गुरु के गुणों पर रिझो, तब तुम्हारे जीवन का कल्याण होगा। गुरुरूपस्ति या गुरु उपासना शब्द का अर्थ है गुरु के समस्त गुणों को जानकर (उप + आसना; उप - समीप, आसना - बैठना)। गुरु के समीप बैठना। नजदीकी भौतिक नहीं आत्मिक होनी चाहिए। गुरु के गुणों के स्वरूप को जानकर, उनके महत्त्व को जानकर गुरु के नजदीक आने वाले ही गुरु की कृपा के पात्र बन पाते हैं। अन्यथा ऐसे ही रह जाते हैं। कुछ लोग हैं जो गुरु की संगति में आकर अपने जीवन का गुणात्मक परिवर्तन कर डालते हैं। एक क्षण की संगति से उनके जीवन में आमूल चूल परिवर्तन आ जाता है। कुछ लोग हैं जो सारी जिंदगी गुरु के चरणों में रहकर भी कुछ अर्जित नहीं कर पाते हैं। ध्यान रखना **गुरु के साथ रहना और गुरु की उपासना करना दोनों में बहुत अंतर है।** गुरु के साथ रहने वाले केवल भौतिक समर्पण रखते हैं। लेकिन गुरु की उपासना करने वाले गुरु के प्रति अंतर्मन से समर्पित होते हैं। और जो गुरु के चरणों में अंतर्मन से समर्पित हो जाता है उसके जीवन में रूपान्तरण की प्रक्रिया स्वयमेव प्रारंभ हो जाती है इसलिये सदगुरु का साच्चिध्य मिलता है, तो समर्पण की बात सोचो। गुणात्मक परिवर्तन का अपना ध्येय बनाओ तो कुछ हो सकता है।

अन्तर्मन का समर्पण ही है रूपान्तरण की शुरुआत

हम यह तो सुनते हैं कि चंदन की संगति से चंदन के वन में रहने वाले नीम के पेड़ भी सुगंधित हो उठते हैं क्योंकि चंदन का काम है सुवास लुटाना और नीम का काम है सुवास को ग्रहण करना, पर वहीं दूररी ओर हम यह भी देखते हैं कि चंदन के तने से लिपटे रहने वाले सांप उसकी सुगंध को प्राप्त नहीं कर पाते, अपितु उसके तने से लिपटने

के बाद भी अपना जहर ही उड़ेलते रहते हैं। संसार में भी बहुत से ऐसे लोग हैं जो सदगुरु के चरणों में लिपटे रहने के बाद भी अपने पूर्वाग्रह का जहर ही उड़ेलते हैं, उनसे कुछ प्राप्त नहीं कर पाते। वे चंदन की सुवास नहीं ले पाते हालांकि चंदन को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। **“चंदन विष व्यापै नहीं लिपटे रहत भुजंग”**। चंदन पर जितना भी भुजंग लिपटे उस को कोई फर्क नहीं पड़ता अपितु यह कहा जाता है कि चंदन पर जितना भुजंग लिपटे उसकी सुगंध उतनी ही बढ़ती जाती है। ये भाव अपने मन में जगना चाहिए। गुरु को अपने मन में परख लो और उनके प्रति समर्पित हो जाओ।

अटल श्रद्धान करे कल्याण

गुरु के लिये शिष्य का समर्पित होना जरूरी है और वह समर्पण कैसा होना चाहिए ? इस संदर्भ में मुझे एक प्रसंग याद आ रहा है। गुरु शिष्य दोनों चले जा रहे थे। जंगल का मार्ग था। गुरु बड़े ही कृपालु थे, बैठ गये और शिष्य से कहा - “एक काम कर तू मेरी गोद में सर रखकर सो जा। आराम मिलेगा फिर आगे चलेंगे।” गुरु की आज्ञा पाकर वह शिष्य गुरु की गोद में अपने पिता की गोद जैसा बेटे की भांति सर रखकर सो गया। वह सोया ही था कि गुरु को अपनी तरफ एक भयंकर सर्प आता दिखायी पड़ा। गुरु ने सांप को देखकर कहा कि “तुम यहाँ पर क्यों आ रहे हो ? जैसे ही गुरु ने पूँछा कि सर्प ने गुरु से मनुष्यवाणी में कहा कि ‘मैं तुम्हारे शिष्य को काटने आया हूँ। उसका खून पीने आया हूँ।’ गुरु ने पूँछा कि ‘तुम ऐसा क्यों चाहते हो ? यह मेरा शिष्य है। तुम इसका खून क्यों पीना चाहते हो ?’ सर्प ने कहा कि - ‘मैं इसका खून पीऊंगा क्योंकि इसने मेरा खून पिया है और जब तक मैं अपना बैर पूरा नहीं करूँगा मुझे चैन नहीं मिलेगा। इसलिये आप मुझे मत रोकिये। मैं अपना बैर पूरा करके ही जाऊंगा।’ गुरु ने समझाया कि ‘ऐसा मत करो। यह बैर और विरोध की भावना अच्छी नहीं होती। देखो प्रतिशोध की भावना रख करके आज तुम उसे काटोगे, कल इसके मन में यही भावना जागृत होगी और इस भावना से पीड़ित होकर यह फिर तुम्हें काटेगा और तुम इसे काटोगे। इस तरह से प्रतिशोध की परम्परा आगे बढ़ती रहेगी और यह कभी अंत नहीं होगी।’ सांप ने कहा कि ‘आपकी यह सब बातें मुझे समझ में नहीं आती। इसने मुझे नुकसान पहुंचाया है। अब तो मैं इसका

खून चूस कर ही रहूँगा। इसके बिना मैं नहीं रह सकता।' गुरु के बहुत समझाने पर भी जब सांप नहीं माना, तब गुरु ने कहा कि 'एक काम करो, खून ही पीना है तो मेरा खून पी लो।' पर सांप ने कहा कि 'आप जैसे निरपराधी, सरल स्वभावी को काटकर मैं नरक का भागीदार नहीं बनना चाहता। आपने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा इसलिये मैं आप को नहीं काट सकता। आपका खून नहीं पी सकता। मैं तो इसी का खून पीऊँगा।' अब मामला बड़ा विचित्र हो गया। सांप ने गुरु से कहा कि 'आप अगर अभी मना करोगे तो मैं अभी चला जाऊँगा, बाद में चुपचाप आकर काटूँगा पर काटूँगा तो जरूर।' अब गुरु गंभीर हो गये। गुरु ने कहा 'तुम्हें इसका खून पीना है?' सांप ने कहा - 'हाँ पीना है। तो गुरु ने कहा 'ठीक है मैं इसका खून तुम्हें दे देता हूँ तुम पी लेना।' सांप ने कहा 'ठीक है पर मुझे इसके गले का खून पीना है।' गुरु ने कहा - 'ठीक है तुम गले का खून पी लो।' शिष्य सोया हुआ था। गुरु ने आहिस्ता से शिष्य के सिर को जमीन पर रखा। पत्ते का एक दोना बनाया और अपनी जेब से चाकू निकाली फिर शिष्य की छाती पर बैठकर शिष्य के गले में हल्का सा खरोच निकाला, रक्त की धार निकलने लगी। इधर शिष्य को आभास हुआ। आंखें खोली। देखा गुरु मेरी छाती पर बैठे हैं और छुरी चलाकर गले से मेरा खून निकाल रहे हैं। फिर भी उसने आंखें मूंद ली। गुरु ने पर्याप्त मात्रा में खून निकाला और सांप को पिलाया। सांप खून पीकर चलता बना। जैसे ही सांप गया गुरु छाती से नीचे उतरे। शिष्य ने आंखें खोलीं। गुरु को बड़ा आश्चर्य हुआ कहा कि - 'गाढ़ निद्रा में सोते हो इतना सब कुछ होता रहा और तुम्हें कुछ पता नहीं चला। मैं तुम्हारी छाती पर चढ़कर तुम्हारे गले का खून निकाल रहा था और तुम्हें पता नहीं चला।' शिष्य ने कहा कि 'मुझे सब कुछ पता था।' गुरु ने कहा 'तो फिर तुमने प्रतिकार क्यों नहीं किया? तुम चिल्लाये क्यों नहीं?' तो शिष्य ने कहा - 'गुरुदेव, मुझे सब पता था। मैंने सब देख लिया पर मैंने जान लिया कि अगर मेरे गुरुदेव मेरी छाती पर चढ़कर गले पर छुरी चला रहे हैं तो जरूर उनके मन में हित की भावना होगी। अहित की भावना नहीं होगी। इसलिये फिर किसी भी प्रकार के प्रतिकार की बात क्या?' यह होती है समर्पण की भाषा जो आंतरिक होती है। और ऐसे लोग ही परीक्षा में खरे उतरते हैं।

गुरु परीक्षा के हम कितने पात्र ?

आज अगर थोड़ी भी परीक्षा की बात हो जाए तो सब किनारा काटने लगेंगे। आज लोग गुरुओं की तो परीक्षा लेते हैं। किन्तु अपनी परीक्षा की बात आये तो तैयार नहीं। अरे अपनी पात्रता को भी टटोलो। देखा तो मैं हूँ कहां? मेरे मन में कितनी श्रद्धा है और मन में कितना समर्पण? हम यह देखें कि जब देव, शास्त्र, गुरु का अर्घ्य चढ़ाते हैं, पंच परमेष्ठी के रूप में गुरुओं को मानते हैं, णमो अरिहताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं। णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ की माला जपते हैं पर जिनके नाम की हम माला फेरते हैं उनको अपने जीवन में आखिर कितना स्थान देते हैं? विचार करो कि आप बीमार पड़ते हो तो डॉक्टर को दिखाते हो। आपको कोई केस मुकदमा जीतना होता है तो आप अपना वकील ढूंढते हो। आपको अपना मकान बनाना होता है तो इंजीनियर से परामर्श लेते हो। स्वास्थ्य के लिये तुमने अपना फैमिली डॉक्टर बना रखा है। कोठी, मकान के लिये तुम्हारा अपना इंजीनियर है। पर जन्म-जन्मान्तर के इन भव रोगों को दूर करने के लिये तुमने अपना चिकित्सक तैयार किया है या नहीं स्वीकार किया है या नहीं? यह विचारने की जरूरत है। जैसे तुम्हारा फैमिली डॉक्टर है वैसे ही कोई गुरु है या नहीं? आदमी कितना भी बीमार होता है तो डॉक्टर देखता है प्रिस्क्रिप्शन लिख देता है हमारे मन में राहत आ जाती है। हम कहते हैं कि डॉक्टर साहब ने कहा है 8 रोज में ठीक हो जायेगा। हम निश्चिन्त हो जाते हैं। कितना विश्वास है डॉक्टर के वचनों पर। केस लड़ना होता है तो कितना भी उलझा हुआ केस हो हम कहते हैं कि केस हम जीत जायेंगे क्योंकि वकील साहब कह रहे हैं। वकील पर इतना भरोसा। डॉक्टर पर इतना विश्वास? भैया वह तो पैसे लेता है और कोई जरूरी नहीं कि डॉक्टर के द्वारा ठीक होने का आवश्यकता देने पर तुम ठीक हो ही जाओ। अगर वकील पैसे खा जायें तो तुम जीता हुआ केस भी हार सकते हो। तुम्हें डॉक्टर, वकील पर इतना विश्वास है लेकिन सदगुरु के वचनों पर कितना विश्वास है यह तौल कर देखो? जो तुमसे एक रूपया नहीं चाहते। कुछ अपेक्षा नहीं रखते। दिन रात लुटाया करते हैं उनके प्रति कितना श्रद्धा का भाव है?

गुरूपासना तो हम करते हैं। गुरु के चरणों को अर्घ्य चढ़ाना ही गुरूपासना नहीं, अपितु गुरु को अपने जीवन में सर्वोच्च आदर्श के रूप में स्वीकार करना ही सच्ची गुरूपासना है। उन्हें अपने जीवन का सर्वोत्कृष्ट आदर्श मानें। उनके गुणों के प्रति अनुराग रखें और गुणानुरागी बनकर उस मार्ग पर चलने को निरंतर उत्साहित रहे। तब तुम्हें गुरु का सच्चा लाभ होगा। लेकिन अभी तो देखने में आता है कि डॉक्टर, वकील पर जितना भरोसा है उतना तुम्हें अपने सदगुरु पर नहीं। तो कैसे होगा बेड़ा पार? जब तक ऐसी आराधना है तब तक सारी बातें ऊपरी सतह पर हैं और सतही स्तर पर की गई आराधना हमारी आत्मा का उद्धार नहीं कर सकती। इसलिये स्वरूप को समझें गुणानुरागी वृत्ति अपनायें। जिनके सम्पर्क में आने के बाद हमारे अंदर आध्यात्मिक साहस जागृत हो, एक आध्यात्मिक चिंतन उत्पन्न हो, जिनका मार्गदर्शन लेकर, जिनकी प्रेरणा लेकर हम अपने जीवन का रूपान्तरण करने का सौभाग्य अर्जित कर सकें यह गुरु की भूमिका है, यह उनका उपकार है और इसीलिये -

गुरु की महिमा वरणी न जाय, गुरु नाम जपो मन वचन काय ॥

चरण नहीं, आचरण छुएँ

हम सिर्फ पाठ भर नहीं करते रहें, गुरु की महिमा समझें। मन वचन काय से उनका नाम जपो। नाम ही न जपो, उस मार्ग पर भी चलो। आजकल दुनिया में गुरु के चरणों की पूजा करने वालों की तो भरमार है परंतु गुरु के आचरणों को छूने वाले लोग बहुत कम हैं। संत कहते हैं कि **केवल चरण स्पर्श मत करो, आचरण स्पर्श करने का सौभाग्य अर्जित करो**। चरण छूते-छूते तो तुमने अपने जीवन के अधिकांश दिन बिता दिये लेकिन अगर आचरण का एक बार भी स्पर्श कर लेते तो तुम्हारा उद्धार हो जाता। तुमने अगर सच्चे मन से गुरु के चरणों में अपने आप को समर्पित किया है, तो गुरु चरण के छूते ही तुम्हारे आचरण में परिवर्तन आ जायेगा। क्योंकि गुरु तो पारसमणि के समान हैं। पारसमणि की यह विशेषता होती है कि अपने सम्पर्क में आये हुए लोहे को भी स्वर्ण बना देती है।

सोना बनना है तो आवरण हटाओ

आपने सुना है देखा नहीं। पर मैंने दूसरे संदर्भ में देखा भी है। मुझे भी एक ऐसे पारसमणि मिले सदगुरु विद्यासागर जी के रूप में, जिनके सम्पर्क में आते ही मैं अकिंचन से सोना बन गया। यह पारसमणि और सोने की बात तो मैं एक रूपक मानता हूँ। इसके अलावा और कुछ नहीं। यह रूपक है इसका अर्थ समझने की चेष्टा करें। अर्थात् एक शिष्य साधारण लोहे की तरह होता है और सदगुरु पारस मणि की तरह। सदगुरु का सम्पर्क पाकर यदि व्यक्ति पाप पंक से दूर हो जाए उसके पापों का प्रक्षालन हो जाए तो वह अकिंचन प्राणी भी **सोने जैसा पुण्यवान बन जाता है**। गुरु पारस हैं और उनके सम्पर्क में आने वाला शिष्य लोहा। पर यदि गुरु के सम्पर्क में आने के बाद भी शिष्य जहाँ का तहाँ है तो सोचना पड़ेगा। पारसमणि के सम्पर्क के अभाव में लोहा सोना न बने तो बात समझ में आती है लेकिन पारसमणि के सम्पर्क में आने के बाद भी लोहा लोहा ही बना रहे तो स्थिति यह हो सकती है कि या तो लोहा लोहा नहीं है या पारसमणि नकली है। पारसमणि यदि नकली है तो लोहे को सोना नहीं बना सकती। सदगुरु यदि सदगुरु हैं तो उनके सम्पर्क में आने वाले शिष्य के हृदय में आध्यात्मिक भावना जगे बिना रह नहीं सकती। पर कई बार ऐसा भी होता है कि सदगुरु के सम्पर्क में आने वाला शिष्य लोहा ही बना रहता है। पारसमणि नहीं बन पाता। क्योंकि पारसमणि लोहे को तो सोना बनाती है पर उसी लोहे को जो खाली लोहा होता है, दिगम्बर होता है। अभी यदि लोहे को प्लास्टिक के पैकेट में ले जाओ या उस पर कोई पेन्ट चढ़ा हो या उस लोहे में जंग चढ़ा हो तो उसे पारसमणि सोना नहीं बना सकती है। लपेट कर या बांधकर रहोगे तो भी सोना बनने का सौभाग्य अर्जित नहीं कर सकोगे। लोहा ही बने रहोगे। देखो तुम्हारे अंदर यदि असली पॉलीथीन नहीं है तो तुम अपने अंदर सोना प्रकट करने का प्रयास करो। तुम्हारे अंदर यदि पूर्वाग्रह का पेन्ट चढ़ा है तो तुम्हारा लोहा कभी सोना नहीं बन सकता और तुम्हारे अन्दर यदि अंधकार की जंग चढ़ी है तो भी वह लोहा कभी सोना नहीं बन सकता। उसे सदा खुला रखो। खुले मन से समर्पित रहो तभी गुरु की कृपा का लाभ ले सकते हो। गुरूपासना तो एक शब्द है, गुरुपूजा, गुरुवंदना भी चलता है। पर गुरूपासना, गुरूपास्ति

तो प्रमुख रूप से जैन परम्परा में ही है। इसके महत्त्व को हम समझें और सद्गुरु को पहचानकर उनकी आराधना करें। उनके गुणों के प्रति अनुरागी बनें। अपने जीवन का कल्याण करें। बिना गुरु की कृपा के जीवन का उत्थान नहीं हो सकता। श्रावक के षट् कर्तव्यों में इसलिये उसको दूसरा स्थान दिया जाता है। गुरु तो वह है जो हमें गोविन्द तक पहुंचाते हैं। हम कहते हैं -

**गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय ॥**

गुरु ही बनाते हैं भक्त से भगवान्

गुरु गोविन्द की प्राप्ति का मार्ग बताते हैं। हमारे **आचार्य कहते हैं कि गुरु गोविन्द को बताते ही नहीं गोविन्द को बनाते भी हैं**। गुरु की कृपा से हम अगर अपनी भीतर की गुणवत्ता को पहचान लें तो हमें भगवान बनने में देर नहीं लगेगी। गुरु ही गोविन्द बना सकते हैं।

पर गुरु के नाम पर यदि गुरु घंटाल हो जाए तो बहुत बड़ा गड़बड़ हो जायेगा। लेकिन क्या करें आजकल तो हम हर किसी को गुरु कह देते हैं। बड़े गुरु हो। यानी बड़े चालाक, चतुर हो। यहां सद्गुरु की बात है। उसमें तो सब माहिर हैं। सद्गुरु का साच्चिध्य पाकर उनकी संगति पाकर हर व्यक्ति अपने जीवन को धन्य/निहाल कर सकता है। हम सबके हृदय में उन परम सद्गुरु के प्रति श्रद्धा जन्मे हमारे अंतरंग में उनके प्रति समर्पण की भावना प्रकट हो और हम उनकी कृपा का प्रसाद पा कर अपने जीवन का उत्थान कर सकें इसी शुभ भावना के साथ मैं अपनी वाणी को यहीं विराम देता हूँ।

स्वाध्याय

स्थिरता को पाने का माध्यम है, स्वाध्याय

किसी नये रास्ते पर चलना हो तो रास्ते के ज्ञान के साथ-साथ रास्ते की दिशाओं का ज्ञान भी जरूरी है। जब तक दिशा का सच्चा ज्ञान नहीं होगा तब तक हम अपने गन्तव्य तक पहुंचने में सक्षम नहीं होंगे। देव और गुरु के माध्यम से मार्ग को जानने के बाद मार्ग में चलने का साहस जुटाने के बाद उसमें स्थिरता के लिए शास्त्र का पारायण जरूरी है। इसी का नाम स्वाध्याय है। जिसे गृहस्थ के कर्तव्यों में तीसरे क्रम पर रखा गया है। जिनेन्द्र भगवान की पूजा-आराधना से हम अपने जीवन में मंगल प्रेरणा पाते हैं। जीवन में पवित्रता का अनुष्ठान करते हैं। सद्गुरुओं के सत्संग में जा कर हम अपने जीवन में परिवर्तन लाते हैं और उसमें स्थिरता स्वाध्याय से आती है। हमने पूजा-आराधना में, गुरुओं की संगति में पावन प्रेरणा पाई लेकिन हमारे मन में इतनी चंचलता और अस्थिरता रहती है कि हम जो प्रेरणा पाते हैं उसमें स्थायित्व नहीं ला पाते। स्थायित्व के लिए स्वाध्याय एक सबसे अच्छा साधन है। इसीलिए संतों ने स्वाध्याय करने की प्रेरणा दी है।

स्वाध्याय के दो रूप हैं - एक रूप तो ग्रन्थों के अध्ययन का/सत्-साहित्य के अनुशीलन का और दूसरा रूप है स्व के अध्ययन का अर्थात् अपने परिणामों के अन्तर विश्लेषण करने का। प्रत्येक व्यक्तिको दोनों प्रकार का स्वाध्याय करना चाहिए। हम अपने मन को पाप और अनाचार से दूर करना चाहते हैं, बुराईयों और विकारों से मुक्त करना चाहते हैं तो हमें सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना उसमें बहुत सहायक है। जब हम सद्शास्त्र पढ़ते हैं तो शास्त्रों के माध्यम से जो प्रेरणा मिलती है, मार्गदर्शन मिलता है उससे हमें बहुत सारी जानकारियां प्राप्त हो जाती हैं। उस जानकारी के कारण हमारी आस्था में प्रगाढ़ता आती है और ज्ञान-मूलक आचरण में स्थिरता भी ज्यादा होती है। किसी भी कार्य और किसी भी क्रिया को हम अज्ञान पूर्वक करते हैं तो उसमें हमारा उतना जुड़ाव नहीं होता। जब उसी बात को हम पूरी जानकारी के साथ करते हैं तो हमारा जुड़ाव कई गुणा बढ़ जाता है।

आत्म की सुई में आगम का धागा

बन्धुओ, स्वाध्याय करने से हमें दो प्रमुख लाभ होते हैं पहला लाभ तो यह होता है कि हमारी क्रियाओं में निर्मलता आती है, स्थिरता आती है और दूसरा लाभ यह कि, हमारे भावों में भी शुद्धि बढ़ती है। ज्ञान-मूलक आचरण हमारे जीवन में स्थिरता लाता है और उससे हमारे भावों में विशुद्धि बढ़ती है। बहुत सारी क्रियायें हैं जो हम धर्म के नाम पर संस्कार-वश करते रहते हैं पर बन्धुओ, यदि उसकी प्रासंगिकता का, उसकी वैज्ञानिकता का व उसकी उपादेयता का अच्छी तरह से बोध हो जाय तो उसके प्रति जो हमारा जुड़ाव होता है वह आंतरिक हो जाता है। आंतरिक जुड़ाव पूर्वक जब कभी हम काम करते हैं तो उसका जो आनन्द होता है वह भी अपने आप में अद्भुत होता है और वह अनुभूति भी अपने आप में विलक्षण होती है। इसलिए संत कहते हैं अपने जीवन को सुखी बनाना चाहते हो और अपने चित्त को भ्रमित होने से बचाना चाहते हो तो स्वाध्याय करो। इसीलिए गृहस्थों के मुख्य कर्तव्यों में स्वाध्याय को लिया गया। मुनियों के बारह तपों में स्वाध्याय को एक महा तप निरूपित करते हुए कहा गया है -

ण वि अत्थि ण वि होहिदि सज्झायसमं तवो कम्मं । भगवती आराधना, 107

इसे परम तप कहा गया और यह कहा गया कि स्वाध्याय से श्रेष्ठ कोई तप नहीं है। वस्तुतः हमारे मन का स्वभाव चंचल है और चंचल होने के साथ-साथ हमारा मन अक्सर कुमार्गगामी भी होता है। कुमार्ग की ओर भागते हुये मन को स्थिर बनाने के लिए स्वाध्याय से श्रेष्ठ आलम्बन कोई दूसरा नहीं है। आचार्यों ने लिखा है, जैसे एक हरे-भरे वृक्ष की शाखाओं में बन्दर इधर से उधर डोलते हुए भी काफी देर तक टिक सकता है, वैसे ही हमारा मन बन्दर की तरह है जिसे हम श्रुत ज्ञान की शाखाओं पर घुमा करके नियंत्रित कर सकते हैं। हम शास्त्रों के पारायण में /सत्-साहित्य के अध्ययन और अनुशीलन में अपने मन को रमाते हैं तो न केवल हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है अपितु हमारे भाव में विशुद्धि जागृत होती है। हमारे परिणामों में भी निर्मलता आती है। हमारे चित्त के विकार भी दूर होते हैं। इसलिए अच्छे ग्रन्थों का/सत्-साहित्य का अध्ययन, पठन-पाठन और पारायण जरूर करना चाहिए। यह स्वाध्याय गृहस्थों के मुख्य कर्तव्यों में

कहा गया है। जो सुई सूत या डोर समेत है वह कभी गुमती नहीं और गुम भी जाये तो सूत को पकड़ कर हम सुई तक पहुंच जाते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं - प्राकृत में शास्त्र को भी सूत्र कहा जाता है। सुग पानी-धागा, और सूत्र पानी- आगम। जैसे धागे से युक्त सुई नहीं गुमती ऐसे ही सूत्र रूप जिनवाणी रूप/धागा से जिसका जीवन जुड़ा है उसकी आत्मा चौरासी लाख योनियों में कभी नहीं भटकती और यदि तुम्हारी आत्मा इधर-उधर हुई तो सुई के माध्यम से भले ना पहुंच पाओ लेकिन धागे के माध्यम से उस तक पहुंचा जा सकता है। आगम के वाक्यों को धागे सदृश्य जिसने अपनी आत्मा की सुई में पिरो दिया उसकी आत्मा संसार में कभी भटक नहीं सकती, कभी भ्रमित नहीं हो सकती और उसका कभी अकल्याण नहीं हो सकता। इस मर्म और महत्त्व को समझने की हमारी कोशिश होनी चाहिए और जीवन को तदनुरूप ढालने का प्रयत्न करना चाहिये।

कैसे बदला जीवन इनका ?

एक बड़ी विडम्बना देखने को मिलती है आजकल के लोगों में स्वाध्याय के प्रति जैसी अभिरुचि होनी चाहिये वैसी रुचि दिखती नहीं। ज्यादा हुआ तो हम पूजा-पाठ, व्रत-उपवास व माला में रुचि ले लेते हैं लेकिन स्वाध्याय के प्रति जैसी रुचि दिखनी चाहिये वैसी परिलक्षित नहीं होती। बन्धुओ ! ये सारी क्रियाएँ आप करिये लेकिन इसके साथ में यदि स्वाध्याय जुड़ जायेगा तो आनन्द की वृद्धि कई गुणा बढ़ जायेगी। जो आप कर रहे हैं उन क्रियाओं में चार-चांद लग जायेंगे। वैसा करने की कोशिश कीजिये। मेरे सम्पर्क में अनेक लोग हैं जिन्होंने स्वाध्याय के प्रभाव से अपने जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन घटित किया है। सुरेन्द्र जैन का नाम एक युवक है एम.पी. में, अभी डीएसपी की पोस्ट में है। जब वह डीएसपी की तैयारी कर रहा था तब से हमसे जुड़ा हुआ था। कुछ वर्ष पूर्व वह हमसे मिला, उसने जो बात बतायी उसे सुनकर मैं आश्चर्य चकित रह गया। उसने कहा महाराज ! पिछले दिनों ऐसे ही मेरे मन में स्वाध्याय की भावना जगी, मैंने सदासुखदासजी की रत्नकरंड भाषा वचनिका पढ़ी तो मेरी आत्मा में उथल-पुथल मच गयी। मैंने सोचा कि हम कितना पाप व अत्याचार कर रहे हैं। मेरी आंख खुल गई। महाराज, तब से मैंने रिश्वत लेने का त्याग कर दिया है। मैं बाजार की चीजें खाने से

परहेज करता हूँ। रात्रि भोजन छोड़ दिया है। बस एक स्थिति के लिए छूट है। (भिण्ड में वे पोस्टेड थे) बोले हमें डाकुओं का पीछा करने के लिए तीन-तीन, चार-चार दिन बीहड़ों में रहना पड़ता है वहां पर तो जो मिल जाये वो ही खाना पड़ता है। पर महाराज हमने इन सब चीजों को अपने आप छोड़ दिया है। अब उनके प्रति ग्लानि का भाव होता है। हमारे मन में ऐसी पाप की भीति लग गयी है। बन्धुओ ! यह प्रयोग है। पुलिस जैसे विभाग में रहने वाला एक युवा जो 30 या 32 साल के लगभग है उस व्यक्ति के जीवन में भी स्वाध्याय से ऐसा परिवर्तन आ सकता है। क्या पता कौन सा शब्द तुम्हारे जीवन में मोड़ ला दे। मनुष्य की आत्मा जब तक प्रसुप्त अवस्था में होती है तभी तक वह पाप व अनाचार के मार्ग में चलता है लेकिन जैसे ही उसकी आत्मा प्रसुप्त अवस्था को छोड़कर प्रबुद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाती है उसके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हो जाता है। जो अब तक पाप के पंक में लिप्त था वह अब पुण्य के शिखर पर पहुंचने का सौभाग्य अर्जित कर लेता है। बन्धुओ ! इस प्रसुप्त अवस्था को प्रबुद्ध अवस्था तक पहुंचाने की जरूरत है। जिनवाणी हमें जगाने वाली है जैसे सोये हुए बच्चों को मां जगाती है वैसे ही जिनवाणी मां हमारी सोती हुई आत्मा को जागृत कर देती है। एक बार यदि आत्मा जागृत हो गई तो फिर इसके लिए ज्यादा उपदेश की जरूरत नहीं होती। इसके प्रति हमारी दृष्टि होनी चाहिए। हम स्वाध्याय के प्रति अपना रुझान बढ़ायें। ग्रन्थों का अध्ययन करें। हमारे आचार्यों ने जो लिखा है उसे पढ़ने व समझने की कोशिश करें और परिस्थिति के अनुरूप उसे अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करें।

स्वाध्याय हमारा लाइट पोस्ट

बन्धुओ ! स्वाध्याय को हमारी संस्कृति में शुरू से बहुत अधिक प्रमुखता दी जाती रही है, लेकिन आज हमने उसे गौण करना शुरू कर दिया है। हमें लगता ही नहीं है कि स्वाध्याय हमारे किसी काम की चीज है। हमने ज्यादा ही सोच लिया स्वाध्याय तो केवल पण्डितों के काम की चीज है। बन्धुओ ! ऐसा नहीं, स्वाध्याय का मतलब पण्डित बनना नहीं, स्वाध्याय का मतलब है अपने मन को निर्मल बनाना, अपने जीवन को सुधारने का मार्ग अपनाना।

हम कहीं आते जाते हैं तो अपने साथ नक्शा लेकर चलते हैं। एक गाइड बुक लेकर चलते हैं। किसी यात्रा में जाना हो तो उसके माध्यम से हमें दिशा-निर्देश मिलता है और फिर हम उसका आधार व आलम्बन लेकर लम्बी चौड़ी यात्रा कर लेते हैं। संसार विराट यात्रा है। इस विराट यात्रा में यदि तुम्हारे पास अवलम्बन नहीं होगा तो तुम अपने मुकाम तक कैसे पहुंचोगे ? भटक जाओगे। संसार एक भूल-भूलैया है कदम-कदम पर रास्ते फूटे हुए हैं तुम्हें पता नहीं कहां जाना है ? अच्छा रास्ता पकड़ते-पकड़ते व्यक्ति कब भटक जाय उसका पता नहीं ? संसार की भूल-भूलैया में जिनवाणी का अध्ययन/संत-साहित्य का पारायण वैसा ही है जैसे कि किसी समुद्र में कोई प्रकाश स्तम्भ हो। समुद्र में न कोई ओर दिखता है न कोई छोर। लेकिन जब बीच में कोई प्रकाश स्तम्भ आता है तो वह हमारे मार्ग को प्रशस्त कर देता है। संसार सागर अपार है इसका कोई ओर-छोर नहीं है। ऐसे संसार सागर में अपने आप को भटकने से बचाना चाहते हैं तो स्वाध्याय करना शुरू कीजिये उसके प्रति अपनी रुचि बढ़ाइये। यदि आपकी रुचि बढ़ती है तो मार्ग में कहीं कठिनाई नहीं बशर्ते हमारे मन में रुचि हो, लगन हो, भावना हो। आजकल लोग कहते हैं महाराज हमें समझ में नहीं आता। बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं, संस्कृत व प्राकृत में लिखा है हमें समझ में नहीं आता। सच पूछो तो ऐसे लोगों की बातें हमें समझ में नहीं आतीं। अरे भैया कम्प्यूटर के युग में जी रहे हो तकनीकी और प्रौद्योगिकी की सूक्ष्म विद्या को अर्जित करने की सूक्ष्म बुद्धि तुम्हारे पास में है और आचार्यों की सरल वाणी को समझने की क्षमता तुम्हारे पास नहीं है यह बात मेरी समझ से परे है। जब आप वहां शिक्षा ग्रहण कर सकते हो, उन बातों को समझ सकते हो तो आपके पास इतनी प्रतिभा तो है ही कि आप हमारे ज्ञानी आचार्यों की वाणी को समझ सको। बस आवश्यकता है रुचि जागृत करने की। एक बार यदि अभिरुचि जग गयी तो ज्यादा कुछ बोलने की जरूरत नहीं।

कैसी विलक्षण प्रतिभा ?

जैन परम्परा में एक बहुत बड़े विद्वान हुए हैं रतनचंद सहारनपुर वाले। वे मुख्तार थे उन्हें अंग्रेजी व उर्दू के अलावा हिन्दी भाषा भी नहीं आती थी। आप सुनकर ताज्जुब करोगे कि ऐसा व्यक्ति कभी जैन जगत का शिरोमणि भी हो सकता है ? ऐसा

व्यक्ति जिसे रिफरेन्स बुक के नाम से कहा गया था। उनसे यदि किसी भी प्रसंग की बात पूछी जाती तो वह कहते कि यह बात अमुक ग्रन्थ के, अमुक पृष्ठ में, अमुक पंक्ति में लिखी हुई है। मालूम है वहां तक वो कैसे पहुंचे ? उन दिनों मंदिरों में गोमटसार का स्वाध्याय हुआ करता था। गोमटसार में कुछ गणितीय विवेचन हैं। मुख्तार जी धार्मिक संस्कारों से ओतप्रोत थे। रोज दोनों समय मंदिर जाया करते थे। शाम के समय में कुछ बुजुर्ग स्वाध्याय कर रहे थे और वे अपनी गणितीय चर्चा में उलझे हुए थे। गणित के प्रति इनकी रुचि थी इसलिए वे एक तरफ खड़े होकर रुचि लेने लगे। इन्होंने देखा कि ये सब कुछ कह रहे हैं लेकिन केलकुलेशन गड़बड़ था। उनकी समस्या हल नहीं हो रही थी। इन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर बताया कि आप इस तरीके से कीजिये और आपकी समस्या हल हो जायेगी। उनका बताना था कि समस्या हल हो गई। सभी बुजुर्ग बड़े खुश हुए उन सबने उनकी पीठ थपथपायी और बोले- बेटा, तेरी गणित बहुत अच्छी है तू रोज आ जाया कर, हम सबको समझा दिया कर और गलतियां बता दिया कर। बस, प्रेरणा व प्रोत्साहन मिला। वाकई में वे बुजुर्ग बड़े अनुभवी थे। आजकल के होते तो उनसे कहते जुम्मा-जुम्मा आठ रोज का है और हमें सिखाने आया है। हम जिन्दगी भर से स्वाध्याय करते आ रहे हैं और हमें समझाने चला है। वस्तुतः जब हम ठेकेदार बन जाते हैं तो मार्ग बंद कर देते हैं। वे बड़े अनुभवी थे अब वह रोज आने लगे। प्रतिभा तो उनके पास थी ही जिनवाणी के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा, विनय और बहुमान था। रोज बैठते गये और जिनवाणी में घुसते गए। प्रवेश हुआ और उसका नतीजा निकला कि एक युवक जिसे अंग्रेजी व उर्दू के अतिरिक्त कुछ नहीं आता था वह जैन जगत का प्रकाण्ड विद्वान बन गया।

काश ! स्वयं को जाना होता ?

बन्धुओ ! आप तो उनसे अच्छे हो। आपके भीतर भी वे सारी प्रतिभाएं हैं, क्षमताएं हैं आवश्यकता मात्र उद्घाटन की है। यदि तुम्हारे मन में विनय, बहुमान व लगन है तो कोई बात असम्भव नहीं है थोड़ा समय समर्पित कर दें। अपनी प्राथमिकताओं को बदलना होगा। हम लोगों ने भी तो स्वाध्याय करके ज्ञान अर्जन किया है। कोई मां के पेट से ज्ञान लेके नहीं आया। ज्ञान तो सतत अध्ययन व अभ्यास से होता है। आप भी

कर सकते हो। हमने जिस परम्परा में जन्म लिया है जिस धर्म का पालन कर रहे हैं उसके विषय में कम से कम इतनी जानकारी तो हो कि इसकी क्या उपादेयता है ? क्या वैशिष्ट्य है, क्या महत्त्व है ? बहुत कम लोग इन बातों का ध्यान रखते हैं। मैं अक्सर जहां रहता हूँ वहां युवाओं को प्रेरित करता हूँ, क्लासेस लेता हूँ।

एक बार की बात है जबलपुर के पास गोटेगांव में हमारा चातुर्मास हो रहा था। वहाँ मैंने युवकों के लिए क्लास ली। क्लास लेने के पहले दिन ही एक युवक मेरे पास आया और उसने कहा- महाराज आज से साल भर पहले आप मुझे मिल जाते तो आज मैं डिप्टी कलेक्टर हो गया होता। मैंने कहा - भैया, मेरे मिलने से डिप्टी कलेक्टर होने का क्या संबंध ? बोला क्या बताऊँ महाराज, मैं एम.पी.पी.एस.सी. में इन्टरव्यू के लिये सेलेक्ट हुआ। मैंने अपने नाम के आगे जैन लगाया था, इन्टरव्यू लेने वाला जो अधिकारी था उसने मुझसे पहला प्रश्न किया - 'जिन किसे कहते हैं ?' उसने कहा - महाराज, मैंने आज तक होस्टलों में जाकर पढ़ाई की, सब कुछ जाना पर यह नहीं जाना कि जिन किसे कहते हैं ? मेरा इन्टरव्यू बिगड़ गया और सेलेक्शन रुक गया। आप में से भी बहुत से ऐसे होंगे जो अपने को जैन कहते हैं, लेकिन जैनत्व क्या है ? इससे एकदम अन्जान हैं। जैनत्व को जानोगे तो अपने आप सब कुछ हो जायेगा। जानने के बाद आपके आचरण में जो निर्मलता आयेगी वो असल विशिष्ट होगी। इसे जानने-पहचानने की कोशिश कीजिये।

हर क्षेत्रों में योगदान जैनाचार्यों का

हमारे आचार्यों ने ग्रन्थों में जो बातें लिखी हैं वो आज के वैज्ञानिकों को भी चौकाने वाली हैं। बहुत सारी ऐसी बातें हैं जिनके बारे में वे बहुत महत्त्व देते हैं। बन्धुओ ! हमारे ग्रन्थों में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं जिन को आप पढ़ोगे तो आपका मस्तक उन पूर्वाचार्यों के प्रति श्रद्धा से भर उठेगा। झूम उठेगा। एक जमाना था जब वैज्ञानिक एनर्जी व मैटर को अलग कहा करते थे और आज आगे आकर एडिक्टर ने कहा मैटर व एनर्जी एक ही वस्तु के दो नाम हैं। इसे हमारे आचार्यों ने आज से 2000 वर्ष पहले ही ग्रन्थों में लिख दिया था कि ये सब मैटर (पुद्गल) के ही भेद हैं। जब वैज्ञानिकों को ये तत्त्व दिये

जाते हैं तो वे भी बड़े आश्चर्य चकित होते हैं कि जैनाचार्यों की दृष्टि कितनी सूक्ष्म थी। ध्यान रखना, केवल भौतिक जगत ही हमारा साध्य नहीं है आन्तरिक जगत ही हमारा मूल साध्य है और हमारे आचार्यों ने शास्त्रों में जो विवेचन किया है उसमें आन्तरिक जगत के साथ-साथ बाहरी जगत का भी परिचय कराया है। जीवन और जगत के रहस्यों को अगर ठीक ढंग से जानना है तो हमें शास्त्रों के माध्यम से ही जानने का सौभाग्य मिलता है।

आज गणित के क्षेत्र में बहुत विकास हुआ है आपको सुनकर ताज्जुब होगा कि **दशमलव प्रणाली के जनक जैन आचार्य थे महावीराचार्य।** षट्खंडागम व गोम्मटसार में जो गणितीय विवेचना है उस पर प्रोफेसर एल.सी. जैन ने जो जबलपुर के एक बहुत बड़े प्रोफेसर हैं उनसे 2000 पृष्ठों की विवेचना लिखी है। उन्हें जापान व रूस में सम्मानित किया गया है। उसमें लिखा गया कि आज से 1500 वर्ष पहले जो जैन आचार्य थे, वे गणित में जिस जगह में थे (वह उन दिनों की बात है जब रूस एक महाशक्ति के रूप में था। सन् 1984 की बात आपसे कर रहा हूँ) वहां तक पहुंचने में रूस और अमेरिका जैसे देशों को 200 वर्ष लगेगे। मैं कह रहा हूँ वहां तक पहुंचने में रूस और अमेरिका जैसे देशों को भी 200 वर्ष लगेगे। आप समझिये हमारे ग्रन्थ कितने अर्थ गंभीर हैं पर हमें फुर्सत ही नहीं कि हम पढ़ें। बहुत से ऐसे लोग भी होंगे जिन्हें जैनाचार्यों के 5-10 ग्रन्थों के नाम भी याद नहीं हैं तो आप क्या ग्रहण कर पाओगे? ये आपको सोचने की जरूरत है।

रतनचन्द्र मुख्तार अपने एक शिष्य को पढ़ा रहे थे। उनका एक मित्र था अनिल गुप्ता वह बी.एस-सी. का स्टूडेंट था। एक दिन वह मुख्तार जी से मिलने आया। गणितीय विवेचना चल रही थी। पूछा क्या पढ़ा रहे हो? बोले गणित पढ़ा रहे हैं। क्या खा है इस गणित में? आज की मैथेमेटिक्स इतनी एडवांस हो गयी और आप कहां इसमें लगे हैं? मुख्तार सा. को अच्छा नहीं लगा उन्होंने कहा तुम्हारी यह लौकिक गणित है, पर यह पारलौकिक गणित है। उस युवक ने कहा कि पारलौकिक गणित का क्या मतलब है? हमें कुछ समझ में नहीं आता। मुख्तार जी ने कहा ठीक है लौकिक व पारलौकिक के महत्त्व को मैं तुम्हें बाद में बताऊंगा एक काम करो मैं तुम्हें एक प्रश्न देता

हूँ इसका हल बता दो। वे बोले वह संख्या बताओ जिसमें 10 जोड़ने पर पूर्ण 'वर्ग' हो तथा 10 घटाने पर भी पूर्ण वर्ग हो। बहुत दिमाग खपाया लेकिन कुछ समझ में नहीं आया। उन्होंने कहा जाओ अपने प्रोफेसर से पूछ कर आना। वह अगले दिन लौटकर आया, उसने कहा गलत प्रश्न है। मुख्तार जी ने कहा गलत और सही तो मैं नहीं जानता पर अभी-अभी उत्तर बताये देता हूँ वह संख्या है "26"। 10 जोड़ोगे तो 36 होगा, 6²-36 यह पूर्ण वर्ग है और 10 घटाओगे तो 16 होगा। 4²-16 ये पूर्ण वर्ग है। तब समझ में आया कि पारलौकिक गणित क्या होती है। इसका उस युवक पर बड़ा असर पड़ा। आज भी वह दिल्ली में उच्च अधिकारी के रूप में पदस्थ है और जैन धर्म को अंगीकार किये हुए प्रतिदिन पूजन व अभिषेक करता है अनिल गुप्ता।

स्वाध्याय हमारे जीवन को मंगलमय करने वाला है

बन्धुओ! मैं दो दृष्टियों से आप सबको स्वाध्याय की प्रेरणा देना चाहता हूँ -

1. अच्छा मार्ग पाइये इसके बिना आपके जीवन का कल्याण नहीं हो सकता। भगवान के पास आप दिन भर नहीं रह सकते। साधु सन्त सदाकाल आपके पास नहीं रह सकते लेकिन जिनवाणी को आप सदैव अपने हृदय और मस्तिष्क में रख सकते हैं। जिनवाणी के माध्यम से आप अपने जीवन का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। स्वाध्याय करना प्रारम्भ कीजिये आपके जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन हो सकता है। एक वाक्य से भी बड़ा परिवर्तन हो सकता है बस इतना ध्यान रखना कि अध्ययन पंडिताई के लिए नहीं - जीवन को बदलने के लिए करना। आजकल ऐसे लोग बहुत हैं जो अपने दिमाग का वजन बढ़ाने के लिये अध्ययन करते हैं। सम्यक् बोध पाने के लिए अध्ययन करो। बोध पावोगे तो तर जावोगे और बोझ बढ़ावोगे तो मर जावोगे"। मेरे जीवन का पथ किससे प्रशस्त होगा केवल उसी मार्ग की बात सोचिये यदि इतनी बात हमारे दिमाग में बैठ जाती है तो ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं। बन्धुओ आप कहते हैं कि आपको याद नहीं होता, आप अपनी धारणा में नहीं बैठा सकते, कोई बात नहीं लेकिन कम से कम आप जितनी देर स्वाध्याय करेंगे उतनी देर तक आपके परिणाम तो निर्मल बने रहेंगे और उनके संस्कारों से शेष समय में निर्मलता उत्पन्न होगी। एक बार किसी भी ग्रन्थ से

शुरूआत कीजिये आपके जीवन में बहुत बड़ा मोड़ आयेगा। मैं उन लोगों से कहना चाहता हूँ जिनको संस्कृत व प्राकृत भाषा से बहुत डर लगता है। बन्धुओ आजकल सब ग्रन्थों का अनुवाद हो चुका है। आप जिनवाणी को अवश्य पढ़िये।

प्रामाणिकता का ध्यान रहे

एक बात ध्यान रखना- जिनवाणी को पढ़ना, जनवाणी को नहीं। यह भी सावधानी की जरूरत है। स्वाध्याय करो जिससे आत्मा का हित हो सके। जिसमें प्रयोजनीय बातों का उल्लेख हो। ऐसे ग्रन्थों को मत पढ़ लेना जिसे पढ़कर कहीं पहुंचना हो और कहीं और पहुंच जाओ। आपकी गार्ड बुक सही हो। सही नकशा देखकर के चलोगे तो मुकाम तक पहुंचोगे वरना कहीं के कहीं पहुंच जाओगे। **आचार्यों की जो मूलवाणी है उसे पढ़ने का प्रयत्न करिये।** आज इस बात को कहने में मुझे कोई संकोच नहीं कि हमारी जिनवाणी के साथ घोर मनमानी हो रही है। बहुत सारे ग्रन्थों में मूल आचार्य कुछ कह रहे हैं उसका हिन्दी अनुवाद कुछ और किया जा रहा है। भावार्थ तो एकदम कुछ का कुछ निकाला जा रहा है और भोले-भाले प्राणी जिन्हें संस्कृत का ज्ञान नहीं होता वे अर्थ का अनर्थ ग्रहण कर बैठते हैं। आचार्यों ने कहा -जिनवाणी के नाम पर हर किसी की बात को स्वीकार मत करना। क्यों? **“वक्तुः प्रामाण्यात् वचन-प्रमाणं”** वक्ता की प्रामाणिकता से ही वचनों में प्रामाणिकता होती है। हम उसे ही सत्साहित्य/सत् ग्रन्थ व सत् शास्त्र मानें जो वीतराग द्वारा प्रणीत हो। क्योंकि वीतराग ही सत् मार्ग का उपदेशक हो सकता है। रागी, द्वेषी, मोही व्यक्ति स्वार्थी होते हैं। जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ सत्य टिक नहीं पाता। वे भोले-भाले लोगों के सामने अपनी बात का अर्थ बदलते हैं, संदर्भ बदलते हैं। इसलिए सन्त कहते हैं पढ़ने के पहले देखें कि रचयिता कौन है? प्रामाणिक है या नहीं इनकी धारणा कैसी है? ये अनेकान्त के उपासक हैं या एकान्त के? इनकी चर्चा व क्रिया कैसी है? यह भली भांति देखकर फिर जिनवाणी मानकर पढ़ो। ऐसे तो आप रोज उपन्यास या मैगजीन भी पढ़ते हो। मैं उसका निषेध नहीं करता। पर जिनवाणी मानकर तो उसे ही पढ़ना तो वीतराग द्वारा प्रणीत है। आपकी दुकान पर कोई ग्राहक आकर चीज का भाव पूछे आपने उसकी कीमत बताई वह कहता

है भैया कीमत ज्यादा बता रहे हो अमुक दुकान में तो इतनी कीमत है। इतने में देना है तो दे दो। आप सोचेंगे इतनी में तो खरीद ही नहीं पड़ती कहां से दूंगा ये आदमी झूठ बोल रहा है। आप उसको चलता करोगे लेकिन वहीं यदि आपका मित्र बैठा हो वो आपसे कहें हां भाई अभी थोड़ी देर पहले मैं भी वहीं बैठा था यही भाव बता रहा था। आप सोचेंगे भाई ठीक बात है, हो सकता है रेट गिर गया हो। अन्तर हो गया? पहले की बात पर भरोसा नहीं था क्योंकि वो स्वार्थी था। दूसरे की बात पर भरोसा था क्योंकि वहां स्वार्थ नहीं था। इसलिए प्रामाणिक शास्त्रों को ही आप स्वीकार कीजिये। **जिन ग्रन्थों की प्रामाणिकता नहीं है उसे आप सामान्य साहित्य मानकर पढ़िये। लेकिन जिनवाणी तो केवल जिनवाणी है जो “वीर हिमाचलतें निकसी, गुरु गौतम के मुख कुण्ड झरी है। वहां से आयी है। जिनवाणी हमारी नहीं है। जिनवाणी तो भगवान महावीर के शासन से आई है।**

बनाये रखना गंगा को गंगा सा निर्मल

वह गंगोत्री का जल है जिसे निर्मल बनाये रखना है। लेकिन क्या कहें आज तो गंगोत्री की गंगा को ही लोग मैली बना रहे हैं इसलिए गड़बड़ी हो रही है। जो बात शास्त्र के अध्ययन के लिये है वही बात प्रवचन के लिए भी है। हम सौ बात अच्छी बोलते हैं और एक बात गलत बोलकर भ्रमित कर दें, तो बड़ा गड़बड़ हो जायेगा। पं. टोडरमल जी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक में वक्ता की प्रामाणिकता को रेखांकित करते हुए कहा **कि वक्ता यदि प्रामाणिक हो तो तुम उसे सुनना, नहीं तो वह वक्ता जनवाणी का हो सकता है। जो निज मत का प्रचारक है वह अप्रामाणिक होगा। वह अपने मत को बतायेगा।** वे कहते हैं कि तुम जिनवाणी सुनने के लिए जाओ उसी के पास ही जाओ जिनकी जिनवाणी के प्रति निष्ठा हो जो आगम के अनुकूल बोलता हो। वे एक प्राचीन गाथा को उद्धृत करते हुए कहते हैं -

**बहुगुणविज्जाणिलयो असुत्तभासी तहा वि मोत्तव्वं ।
जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घहरो विसहरो लोए ॥**

कोई कितना भी अच्छा वक्ता हो, कितना भी गुणवान व विद्यावान क्यों न हो ? यदि वो आगम के विपरीत बोलने वाला है तो उसे दूर से प्रणाम कर देना । क्योंकि सांप चाहे कितना भी कीमती मणि वाला क्यों न हो ? मणि के लोभ में सांप के पास जावोगे तो उसका दंश ही पावोगे । मणी तो तुम्हारे हाथ में आ ही नहीं सकती । ध्यान रखना यदि लौकिक सांप कांटे तो एक ही जान जायेगी और यदि खोटी धारणा वालों का दंश कुमत सूत्र के रूप में ग्रहण किया तो न जाने कितने भव में तुम्हें उसका दंश भोगना पड़ेगा । इसलिए कुमत से बचो । ऐसा हमारे आचार्यों का मार्ग दर्शन है सम्यक् पारायण करो । तुम्हारे पास थोड़ा समय है एक बात ध्यान रखना गलत ज्ञान पाने से अज्ञानी बने रहना उत्तम है अपनी कैसेट व स्लेट बिलकुल साफ रखो । गलत ज्ञान पावोगे, कुमार्ग में जावोगे । **अज्ञानी का उद्धार हो सकता है लेकिन गलत ज्ञान पाने वाले व्यक्ति का कभी उद्धार नहीं हो सकता ।** इसलिए इन बातों को बड़ी गम्भीरता से समझिये । अपने जीवन के कल्याण का मार्ग अंगीकार कीजिये । सद्-शास्त्रों का अध्ययन आपको इसलिए भी जरूरी है ताकि कभी कोई आपको आपके मार्ग से भ्रमित नहीं कर सके । आपकी निष्ठा भी वैसी होनी चाहिये । आज कई-कई बार लोग कहते हैं कि महाराज क्या करें, ऐसा है, वैसा है ? अलग-अलग धारणाएं लोगों की बनती हैं । अलग धाराओं में लोग बह रहे हैं । बह क्यों रहे हैं ? हम अपना काम नहीं कर पा रहे हैं इसलिए । आप स्वाध्याय कीजिए, मार्ग को समझिये तो कभी आपके मन में भ्रान्ति नहीं हो सकती । जिसने जैन दर्शन को ठीक ढंग से समझ लिया वह दुनिया के किसी दर्शन से प्रभावित नहीं हो सकता । इतिहास में ऐसे कई उदाहरण प्रस्तुत हुए हैं ।

मिथ्या तम नाशवे कूँ, ज्ञान के प्रकाशवे कूँ भानु सी बखानी है

हमारी परम्परा में भगवान महावीर का शासन उनके बोधि प्राप्त करने के साथ ही शुरू हुआ । इन्द्रभूति गौतम को जब वीर की देशना का बोध हुआ तो उनकी जीवनधारा परिवर्तित हो गयी । वह अपने 500 शिष्यों के साथ जैन धर्म में दीक्षा लेकर भगवान महावीर के शिष्य बन गये । जैन परम्परा में एक बहुत बड़े आचार्य विद्यानन्द जी

हुए जो वेद-वेदान्त के ज्ञाता थे । उन्हें जब आचार्य समन्तभद्र रचित आप्तमीमांसा पढ़ने का सुअवसर तो मिला उस आप्त मीमांसा को पढ़ते ही उनके अन्दर का अज्ञान दूर हो गया । उन्हें लगा कि सच्चा दर्शन तो अनेकान्त दर्शन है । उसी दिन उन्होंने वेदान्त को त्यागा और जैन धर्म को स्वीकार किया । दिगम्बर जैन मुनि बने । महान आचार्य बने । वर्तमान में आज उस आप्त मीमांसा की सबसे बड़ी टीका **अष्टसहस्री** है जो जैन न्याय का शिरोमणि ग्रन्थ है, वे उसके रचयिता हैं । वर्तमान में उपलब्ध **तत्त्वार्थ सूत्र** के ऊपर सबसे बड़ी टीका “**तत्त्वार्थ-श्लोक वार्तिकालंकार**” के रचयिता भी वे ही बने । जो आचार्य विद्यानन्द ब्राह्मण थे, वेदान्त के पारगामी थे, वे ही जैनदर्शन में निष्णात हो गये ।

दूसरी घटना 20वीं शताब्दी की है । सन् 1922 के आस-पास घटित हुई । वह जमाना था जब एक दूसरे के बीच अपने आपको दूसरों से श्रेष्ठ साबित करने की होड़ चली हुई थी और उस समय शास्त्रार्थ हुआ करते थे । खासकर जैनियों का आर्य समाजियों से शास्त्रार्थ होता था । उन दिनों आर्य समाज का नेतृत्व करते थे आत्मानन्द जी, वे एक कड़े साधक व ज्ञानी थे । वे जब मरणासन पर थे उनकी शिष्य मंडली उन्हें घेरे हुई थी । आत्मानन्द जी कुछ चिन्तित से दिखाई पड़े, शिष्यों ने कहा महाराज आप चिन्ता क्यों कर रहे हैं ? आपकी आखिरी घड़ी है आप परमात्मा का ध्यान करें । आत्मानन्दजी ने कहा मुझे कोई चिन्ता नहीं, चिन्ता किस बात की ? वैसे ही सन्यासी हूँ । मुझे केवल एक चिन्ता है कि मेरे बाद जैनियों से शास्त्रार्थ कौन करेगा ? उनके शिष्य परिकर में एक करमानन्द जी नाम के साधक थे । उन्होंने कहा महाराज, मैं करूंगा आप आशीर्वाद दो । तू करेगा कुछ आता जाता है जो करेगा ? महाराज वचन देता हूँ मैं उनका चप्पा-चप्पा छान मारूंगा आप मुझे आशीर्वाद दें । उन्होंने आशीर्वाद दिया फिर उन्होंने जैन सिद्धान्त का अध्ययन किया । उनके नेतृत्व में 20 वीं शताब्दी का आखरी शास्त्रार्थ 1922 में अम्बाला में हुआ । उस तरफ से नेतृत्व कर रहे थे करमानन्द जी और इधर जैन विद्वानों की तरफ से पं. राजेन्द्र प्रसादजी फिरोजाबाद वाले तथा पंडित जगन्मोहनलाल जी कटनी वाले पूरे दल के साथ थे । 6 दिन तक शास्त्रार्थ चला करमानन्द जी ने बड़े प्रखर तर्क दिये । 7 वें दिन जैसे ही शास्त्रार्थ शुरू हुआ करमानन्द जी ने कहा, आज शास्त्रार्थ सभा का

सदा के लिए अन्त होगा। हमारे जैन विद्वान थोड़े घबड़ाये कि पता नहीं क्या होने वाला है लेकिन करमानन्द ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा कि इन 6 दिनों में मैंने अच्छी तरह जान लिया है कि जैनदर्शन से अच्छा कोई दर्शन नहीं और जैनधर्म से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं। इसलिए आज से मैं आर्य धर्म का परित्याग कर जैनधर्म को स्वीकार करता हूँ। वे करमानन्द अब क्षुल्लक कर्मानन्दजी बन गये। बाद में उन्होंने ग्रन्थ लिखे। बन्धुओ ये जैन धर्म की गहराई है यद्यपि किसी धर्म को श्रेष्ठ और किसी धर्म को अश्रेष्ठ कहना आज के युग में अच्छा नहीं है। हर व्यक्ति की जैसी मान्यता व धारणा है वैसे ही जिएं। हममें धार्मिक सहिष्णुता होनी चाहिये, लेकिन अपनी निष्ठा को दृढ़ बनाकर। आप जैन परम्परा में जी रहे हो तो कम से कम यह समझो कि जैनदर्शन क्या है? आजकल लोग तरह-तरह से भ्रमित करते हैं। परम्परा में भी विभिन्न प्रकार की धाराएं हैं लोग उनके प्रभाव में बंट रहे हैं वे केवल इसलिए कि उन्होंने मार्ग को जाना व समझा नहीं। मार्ग को समझिये कि आचार्य कुंदकुंद की मूल आम्नाय क्या है? यह कहां से चली आ रही है? जब आप पढ़ोगे तो आपको तो यही लगता है कि यही णमोकार मंत्र है, यही भक्तामर है। अरे भैया, णमोकार मंत्र तो वही है लेकिन इसमें हम जिनको नमन कर रहे हैं, वह यह है कि नहीं यह तो देखो। इसलिए मैं आप सबसे कहता हूँ कि स्वाध्याय की अभिरुचि जगाइये इसे पहली प्राथमिकता दीजिये।

घर-घर चर्चा रहे ज्ञान की

हर मन्दिर में एक-एक ग्रुप में स्वाध्याय होना चाहिए। आप टी.वी. देखना व मैगजीन पढ़ना बंद कर दीजिये। आप दूसरी गतिविधियों को कम कर दीजिये। पर स्वाध्याय जरूर कीजिये। यदि आज आपके यहाँ कोई स्वाध्याय कराने वाला नहीं है तो देश में विद्वानों की कमी नहीं है, हर मन्दिर में एक ऐसे विद्वान की नियुक्ति कीजिये जो आपको मौलिक प्रवचन सुना सके। ये हमारे समाज की बहुत बड़ी कमजोरी है। उनको जय-जय कार के अलावा और किसी काम के लिए फुर्सत ही नहीं। महाराज आ जायेंगे तो पूरा जीवन ही समर्पित कर देंगे। और महाराज गये तो सब भूल गये। अरे महाराज के जाने के बाद महाराज का नाम तो बचाकर रखो। वो मार्ग भी बचाकर रखना चाहिए।

कई-कई बार लोग भटक जाते हैं भ्रमित होते हैं उनके पीछे उनकी स्वाध्याय की अरुचि ही प्रबल कारण है। उनको चाहिये खुराक। खुराक आपके पास है नहीं। कहते हैं भूखा आदमी विवेक खो देता है क्या खाये और क्या नहीं खाए? इसलिए रुचि जगाइये, समूह में स्वाध्याय कीजिये। देखिये आपके बीच में कब तक हूँ कुछ कह नहीं सकता, पर यदि मैं आपके बीच में रहा तो मैं चाहता हूँ कि आप लोगों को प्रारम्भिक स्तर पर स्वाध्याय कराऊं और इतना प्रवेश करा दूँ कि फिर आपको स्वाध्याय में किसी से कुछ पूछना नहीं पड़े। वह तो समय बतायेगा लेकिन अपनी कोशिश होनी चाहिए। इस तरह से हम स्वाध्याय करें ताकि मार्ग का ठीक रीति से ज्ञान हो और हम अपने जीवन का रूपान्तरण कर सकें। दोनों काम साथ-साथ चलना चाहिये। एक वाक्य से बहुत परिवर्तन आ जाता है।

एक वाक्य ने जीवन बदला

बन्धुओ! भगवान महावीर के जमाने की एक घटना है रोहिणी नाम का एक बड़ा कातिल चोर था। बड़ी-बड़ी चोरियाँ करता, पर कोई सबूत नहीं बचने देता। सम्राट, सैनिक आदि सभी तंग आ गये थे। पूरा नगर उसके आतंक से परेशान था। रोहिणी का पिता मरणासन्न था उसने बेटे से कहा, सुनो मैं आखिरी क्षणों में तुम्हें सीख देता हूँ कि तुम बाकी जो चाहो सो करना पर भगवान् महावीर की छवि मत देखना व उनकी वाणी मत सुनना। यदि छवि देख ली व वाणी सुन ली तो अपना धंधा चौपट हो जायेगा। उसने पिता को वचन दे दिया तथा छाया व वाणी से बचता रहा। एक बार वह चोरी करके भाग रहा था। पीछे-पीछे सैनिक उसका पीछा कर रहे थे। संयोग ऐसा पड़ा कि वह जिस रास्ते से भाग रहा था उसमें आगे भगवान् महावीर का समवसरण था। अब क्या करे लौटता है तो पकड़ा जाता है। उसने सोचा चलो समवसरण के अन्दर नहीं जाऊंगा। वाणी मेरे कान में जायेगी इससे उसने कानों में उंगलियां डाल लीं। कान में उंगली डाल कर दौड़ा पर यह कैसा संयोग कि थोड़ा ही आगे चला कि एक तीखा पत्थर उसके पांव में चुभ गया। अब वह क्या करें? जबतक पत्थर को हटाये नहीं, आगे नहीं जा सकता कान से उंगली निकाल कर उसने पत्थर हटाया ही था कि उसके दिल में एक वाक्य कांटे की भांति चुभ

गया। उस समय भगवान महावीर देवों के स्वरूप का वर्णन कर रहे थे और कह रहे थे कि देवों की पलकें नहीं झपकती। उसने सुन लिया। सोचा आज तो मेरा वचन भंग हो गया आज मैंने भगवान की वाणी सुनली अब तो मेरा धंधा चौपट हो जायेगा वह ठीक ढंग से दौड़ नहीं पाया और गिर कर बेहोश हो गया। वह पकड़ा गया जब उसे होश आया तो देखता है पूरा वातावरण स्वर्गलोक जैसा है अप्सरायें उसे पंखे झल रही हैं। उसने आंख खोली पूंछा, मैं कौन हूँ? कहाँ हूँ? उन देवियों ने कहा महानुभाव आप दिव्य लोक में आये हैं, स्वर्ग में आपका स्वागत है। अब आप बताइये आपने मनुष्य लोक में क्या-क्या अच्छे व बुरे काम किये हैं? आप सच-सच बतायेंगे तो स्वर्ग में प्रवेश दिया जायेगा वरना नरक में ढकेल दिया जायेगा। उसने सोचा, हमने सुना था कि बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता। मैं जीते जी स्वर्ग कैसे आ गया? अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा हूँ। लेकिन वहाँ सपना नहीं था क्योंकि वहाँ पर पूछा जा रहा था कि आप सच-सच बोलो तभी उसने उनके चेहरों को देखा और पाया कि इनकी पलकें तो झपक रही हैं। भगवान महावीर ने कहा था कि देवों की पलकें नहीं झपकती। उसे बात समझने में देर नहीं लगी। उसने सोचा, ये तो मुझे पकड़ने का अभयकुमार का कारनामा है। कुचक्र में वह भी माहिर था उसने जिन्दगी में जितनी अच्छी बातें थी सब बता दी बुरी बात एक भी नहीं स्वीकारी। अब क्या था कोई साक्षी नहीं होने के कारण वह छोड़ दिया गया। जैसे ही छूटा उसका चिन्तन बदला। धिक्कार है मुझे, मेरे पिता ने अपने स्वार्थ के लिए उस महान आत्मा की छाया से दूर रखा जिसके एक वाक्य ने आज मेरे प्राणों को बचा लिया। यदि मैं उनका हो जाऊं तो मेरे जीवन का उद्धार हो सकता है। वह वहाँ से सीधा निकला व समवशरण में गया। भगवान की साक्षी में दीक्षा अंगीकार कर ली। केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया।

संकल्पबद्ध हों आज - अभी से

एक वाक्य से इतना बड़ा परिवर्तन जब चोर में घटित हो सकता है तो तुम सब तो साहूकार हो। साहूकारों का भी उद्धार होना चाहिये। उस तरफ अपनी दृष्टि जगाइये। अपनी सोच को वैसी बनाइये अपनी चिन्तन धारा को परिवर्तित कीजिये। तभी हमारे

जीवन में परम आनन्द की अनुभूति होगी। बन्धुओ! श्रावकों के लिए स्वाध्याय की बात की गयी है। मैं चाहता हूँ आपने घंटे भर से प्रवचन सुना है। कितने लोग हैं जो नियमित रूप से आधा घंटा स्वाध्याय का नियम लेंगे। मैं हाथ उठाकर देखना चाहता हूँ। व्यक्तिगत रूप से करें या सामूहिक रूप से करें। घर में करेंगे या मंदिर में करेंगे। इधर से महिलाओं को देखता हूँ, बहुत अच्छी बात है आप नियमित स्वाध्याय कीजिये। और इस तरफ बैठे मुखिया लोगों को तो झट से उठाना ही चाहिये जिनके हाथ में झंडा है। सुनना भी स्वाध्याय है जिनवाणी के पारायण बिना आप अपनी सुरक्षा नहीं कर सकते और न मार्ग की सुरक्षा हो सकती है। बन्धुओ! इसी तरह अपने चित्त का अवलोकन करके देखिये। अपने अन्तर मन का विश्लेषण करके देखिये। आज मैंने कोई गलत कार्य तो नहीं किया। आज मैं अपने मार्ग से स्खलित तो नहीं हुआ? आज मेरा चित्त किसी कारण से विकारी तो नहीं बना? उसे संशोधित करने का निरन्तर प्रयास कीजिये तभी हम सबके जीवन का कल्याण होगा। आज समय कुछ ज्यादा हो गया है इसलिए मैं अपनी बात को यहीं पर विराम दे रहा हूँ।



संयम

संयम नाम सुरक्षा का

नदी अपने उद्गम स्थल से निकलती है। अपने दोनो तटों के मध्य में रहकर नियमित वेग से निर्धारित दिशा की ओर प्रवाहित होती है। तब कहीं जाकर विशाल सागर में समाहित होती है। नदी की सागर तक की यात्रा में उसका बहना और तटों की मर्यादा में रहना यह दोनो बड़े महत्वपूर्ण तत्त्व हैं। यदि नदी न बहे तो नदी-नदी नहीं रहती। वह एक छोटा सा पोखर बन कर रह जायेगी। कुण्ड बनकर रह जायेगी। यदि बहे और उच्छृंखलता अपना ले, अपने तटों की सीमा का उल्लंघन कर दे तो वह नदी-नदी न रह पायेगी, मरुस्थल में भटक कर खो जायेगी, नष्ट भ्रष्ट हो जायेगी। **नदी की सागर तक की यात्रा में उसका प्रबलमान होना जितना जरूरी है उससे भी ज्यादा जरूरी है तटों के नियंत्रण में, तटों के बन्धन में बंधे रहना। नदी सागर में सिमट कर मिटती है, मरुस्थल में भटक कर भी मिटती है पर नदी का सागर में सिमटना अपने क्षुद्र अस्तित्व को विराट स्वरूप प्रदान करना है और मरुस्थल में खोना अपने अस्तित्व को ही विनष्ट कर देना है।**

संत कहते हैं जीवन की इस नदी को शान्ति के सागर तक यदि पहुंचाना है तो संयम के तटों का बंधन जरूरी है। बन्धन आवश्यक है, मर्यादा आवश्यक है। जब तक हमारे जीवन में कोई बन्धन न हो, मर्यादा न हो तब तक हम अपनी जीवनधारा को/ प्राणधारा को शान्ति के सागर तक पहुंचाने में सफल नहीं हो सकते। जिस मनुष्य के जीवन में संयम है उसकी सारी ऊर्जा उसको शान्ति के सागर में समाकर उसके अस्तित्व को विराट स्वरूप प्रदान करती है और जिस मनुष्य का जीवन संयम शून्य है उसके जीवन की सारी ऊर्जा विषयों के मरुस्थल में भटक कर नष्ट हो जाती है, सूख जाती है। वह व्यक्ति कभी शान्ति की उपलब्धि नहीं कर पाता। हमारी संस्कृति में संतों ने यही प्रेरणा हमें दी है कि अपने जीवन का समुचित विकास करना चाहते हो तो उसे संयमित बनाओ। गृहस्थों के षट् कर्तव्यों में चौथा कर्तव्य यही है।

देवपूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्यायः संयमस्तपः।

दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने ॥ - प. पं. 6/7

गर दिया चिमनी तले है तब डर नहीं तूफान का

संयम गृहस्थ के जीवन का एक अनिवार्य तत्त्व है। संयम के बिना हमारा जीवन चल ही नहीं सकता। हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में चलें, हमारे लिए संयम जरूरी होता है। आप अपने-अपने घर से निकल कर आते हो, अपनी-अपनी गाड़ियों में सवार होकर आते हो। कैसे चलते हो? आंख मूंदकर कि सावधानी से? आप संयमित गाड़ी चलाकर आते हो तो यहां पहुंच पाते हो और थोड़ा असंयमित हो जाओ तो मार्ग बदलकर मेडिकल कालेज पहुंचना पड़ेगा। अस्पताल पहुंचना होगा। मतलब यह है कि जो मनुष्य प्रवृत्ति में सावधान होता है, वही अपने जीवन का उत्थान कर सकता है और जिसकी प्रवृत्ति असंयत है उसके जीवन में दुःखों के अम्बार लग जाते हैं। एक डॉक्टर ऑपरेशन कर रहा है। वहां उसको कितनी सावधानी की आवश्यकता होती है? क्योंकि वहां उसे मालूम है कि मैंने थोड़ी सी चूक की तो ऑपरेशन फेल हुआ। वहां डॉक्टर के साथ सामने वाला जो मरीज है उसके जीवन-मरण का प्रश्न जुड़ा हुआ है और जहां जीवन-मरण का प्रश्न जुड़ जाता है वहां अपने आप हमारी प्रवृत्ति संयत हो जाती है। डॉक्टर की थोड़ी सी चूक रोगी के लिये जानलेवा साबित हो सकती है। इसलिए कोई भी समझदार डॉक्टर अपनी तरफ से किंचित् भी चूक नहीं कर सकता। यही जस्सत है हमें। हमारा जीवन तो टिमटिमाते दीये की तरह है। टिमटिमाता दीया हमारे हाथ में हो तो हवा का हल्का सा झोंका भी उसे बुझा सकता है। हवा के झोंके की बात तो जाने दीजिये कभी-कभी हमारे श्वास के प्रहार से भी वह बुझ सकता है। उसकी आभा भी चारों तरफ टिमटिमाती रहती है। उसकी आभा सघन नहीं हो पाती, इसलिए उसकी आभा में न तो हम कुछ पढ़ पाते हैं, न उसे सुरक्षित रख पाते हैं। लेकिन उसी दीये पर जब हम एक छोटी सी चिमनी रख देते हैं तो न केवल उसकी सुरक्षा बढ़ती है अपितु उसकी आभा भी संघनित होकर हमें प्रकाश प्रदान करती है। हम उस आभा के प्रकाश में कुछ पढ़ने में भी समर्थ हो सकते हैं और उसकी सुरक्षा भी करते हैं। हमारे श्वास की बात तो जाने दीजिये, साधारण सा हवा

का झोंका भी उसे बुझा नहीं सकता। हवा के तीव्र वेग को वह सहन करने में समर्थ हो जाती है। बन्धुओ! उस दीपक पर चिमनी क्या रख दी गई, उसे सम्पूर्ण सुरक्षा और संरक्षा मिल गई। जो स्थिति दीपक के साथ चिमनी की है, वहीं स्थिति जीवन के साथ संयम की है। **संयम हमारे जीवन का सुरक्षा कवच है।** यदि उसे हमने प्राप्त कर लिया तो हमारे जीवन में कहीं कोई संकट नहीं। कहीं कोई खतरा नहीं। असंयमी को पग-पग पर खतरा होता है। असंयम की ओर बढ़ा हुआ हमारा एक-एक कदम संकट का आमंत्रण है और संयम के साथ रखा जाने वाला एक-एक पग शान्ति का सूत्रपात है। **शान्ति की उपलब्धि संयम के मार्ग से ही होती है और अशान्ति का मूल कारण असंयम है।**

असंयम से आसक्ति, आसक्ति से अतृप्ति

वस्तुतः असंयम उलझाने वाला तत्व है जो हमें इन्द्रिय चेतना में भटका कर हमारे चित्त को भ्रमित करता है। हमारे अंतरंग में आकुलता और आतुरता उत्पन्न करता है। जो हमें अतृप्ति और प्यास की अन्तहीन दौड़ में दौड़ाता रहता है। मिलता कुछ भी नहीं। **असंयम का मूल अशान्ति है और अशान्ति का परिणाम अतृप्ति है।** आसक्ति असंयम को जन्म देती है और असंयम अतृप्ति को। मनुष्य के मन में इन्द्रिय विषयों के प्रति अशान्ति उत्पन्न होती है तो उस आसक्ति से मुग्ध होकर वह उसकी पूर्ति के लिये उसके पीछे पागल होता है और ज्यों ज्यों इन्द्रियों के विषयों की पूर्ति होती है कुछ पल के लिये राहत जरूर होती है लेकिन बाद में वही उसे अतृप्तिकर लगने लगती है। बन्धुओ, **इन्द्रिय विषयों की कहानी यही है। जब तक न मिले तब तक पाने की आतुरता और जब उपलब्ध हो जाये तो भोगते वक्त तृप्ति और भोग लेने के उपरान्त उकताहट।** इसके अतिरिक्त इन्द्रिय विषयों से आजतक न तो किसी को कुछ को मिला है न मिल सकता है। **आचार्य पूज्यपाद कहते हैं -**

आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान्।

अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः ॥ - इष्टोपदेश 17

‘जब तक न मिले तब तक आतुरता उत्पन्न होती है और भोग लेने पर भी जिससे अतृप्ति मिलती है, एक बार जिसके चक्कर में पड़ने के बाद छूटना मुश्किल होता है, ऐसे इन्द्रिय विषयों का आलम्बन बुद्धिमान व्यक्ति कभी नहीं लेता।’ वस्तुतः वह अज्ञानी है जो इन्द्रिय विषयों के चक्कर में उलझता है क्योंकि उससे मिलता कुछ नहीं है। इन्द्रिय विषयों के माध्यम से सुख की कामना करना वैसे ही है जैसे खाज खुजाकर के राहत की अनुभूति करना। किसी व्यक्ति को खाज हो और वह खाज खुजाये इस ख्याल से कि खाज खुजाने से मुझे शान्ति मिलेगी, पर कितनी देर की? यह जानते हुये भी हर व्यक्ति खाज खुजाने में लगा हुआ है।

बन्धुओ सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा अपने जीवन की इस हकीकत को जानता है कि इन्द्रिय विषयों का परिणाम क्या होता है, अपने जीवन के अतीत में मैंने इन्द्रिय जनित विषयों को कितना भोगा और उसके परिणाम स्वरूप मुझे क्या मिला? इस चिन्तन के परिणाम स्वरूप उसे जीवन में एक नई दिशा मिलती है और इसी नई दिशा के बल पर वह अपने जीवन को सुधार लेता है। यह नई दिशा है इन्द्रिय विषयों के प्रति अनासक्ति की। **ज्यों-ज्यों अनासक्ति का भाव बढ़ता है त्यों-त्यों संयम का विकास होता है और जितनी-जितनी आसक्ति का पुट बढ़ता है उतना जीवन में असंयम बढ़ता है।** आसक्ति असंयम को जन्म देती है और अनासक्ति से संयम का आविर्भाव होता है।

अपने जीवन में संयम को प्रकट करना चाहते हो तो अनासक्त जीवन जीने का अभ्यास बनाओ। और अनासक्ति को बढ़ाना चाहते हो तो इन्द्रिय विषयों की असारता का बारबार चिन्तन करो। मैंने जीवन के प्रारंभ से आजतक न जाने कितने विषयों को भोगा है कभी आपने विचार किया है कि इससे मिला क्या?

**विषयों को इतना भोगा कि खुद को ही भोग बना डाला,
साध्य और साधन का अन्तर मैंने आज मिटा डाला।**

**भोगा न भुक्ताः, वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।**

कालो न यातो वयमेव याता- स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा: ॥

वाली बात हमारे साथ आ रही है। कितने भोग भोग नहीं लिये, कितने इन्द्रिय विषयों के भोग सेवन नहीं कर लिये पर मुझे मिला क्या ?

तौ भी तनिक भए नहिं पूरण भोग मनोरथ मेरे

संसार में आप कितने गोरखधन्धे करते हो और उसका हिसाब-किताब रखते हो। इसमें आपको कितनी सफलता और कितनी विफलता मिली ? संत कहते हैं इस भीतर के गोरख-धन्धे का भी तो कोई हिसाब रखो। तुम्हें व्यापार में नुकसान होता है तो छुटपटाते हो। संसार के किसी भी क्षेत्र में विफलता मिलती है तो अपने प्रयत्न की दिशा को परिवर्तित कर देते हो, बदल देते हो। जीवन के क्षेत्र में भी तो वहीं नजरिया होना चाहिए। वही पांच इन्द्रिय के विषय और भोग तुम जीवन के आदिम क्षणों से आज तक भोगते रहे पर मिला क्या ? अतीत के जीवन की बात यदि जानें भी दें तो इस जीवन में तुमने क्या पाया ? कभी विचार किया ? क्या मिला ? हम रोज-रोज वही खाना खाते हैं, रोज-रोज वही कपड़ा पहनते हैं, रोज-रोज वही दृश्य देखते हैं, रोज-रोज वही शब्द सुनते हैं, रोज-रोज वही गन्ध लेते हैं, पांचों इन्द्रियों के विषयों की रोज-रोज वही पुनरावृत्ति होती है लेकिन निष्कर्ष क्या है ? निष्पत्ति क्या है ? परिणाम क्या है ? इसका विचार किया कभी ? हमने सोचा विषयों के माध्यम से मुझे सुख मिल जायेगा। सुख मिला ? खाने में सुख मिला ? पहनने में सुख मिलता है। देखने में सुख मिलता है। सूंघने में सुख मिलता है और मनोनुकूल अच्छी बातें सुनने में सुख मिलता है कितनी देर का ? आजतक क्या नहीं सुना ? क्या नहीं देखा ? किसे नहीं सूँघा ? आज तक क्या नहीं चखा ? और आजतक किसका तुमने स्पर्श नहीं किया ? जगके सारे पदार्थों का तुमने स्पर्श कर लिया। चखे जाने योग्य सारी वस्तुओं को तुमने चख लिया। सूँधी जाने वाली सारी वस्तुओं की तुमने गंध ग्रहण कर ली। दिखने योग्य हर पदार्थ का तुमने आनन्द लिया और सुनने योग्य हर शब्द तुम्हारे कान तक पहुंच चुके हैं लेकिन इसके बाद भी आजतक न तो सुनने की आकांक्षा मिटी, न तो आज तक देखने की चाह मिटी। न तो

आजतक गंध लेने की इच्छा खत्म हुई, न तो आज तक रसना का रस मिटा और न ही आजतक स्पर्श की ललक खत्म हुई। वे तो सब जहां के तहां बरकरार हैं। तो तुम्हें मिला क्या ? यह दूसरों से मत पूछना। अपने मन से पूछना। जब अपने मन से पूछोगे तो तुम्हारे मन से ही इसका समाधान मिलेगा कि जो कुछ किया वह व्यर्थ को अर्थ दे रहे थे इसीलिये सही अर्थों में सिद्ध और समर्थ नहीं हो पा रहे थे। अपने जीवन को सिद्ध बनाना चाहते हो, परम समर्थ बनाना चाहते हो, तो व्यर्थ से बचो, अनर्थ से बचो। सार्थक को अंगीकार करने की कोशिश करो। यह जो व्यर्थ है उसमें अपने जीवन को खपाना अनर्थ है। उस तरफ से तुम्हारी दृष्टि मुड़नी चाहिए। जिसपल इस तरह का चिन्तन तुम्हारे अन्तरंग में जागृत होगा, फिर तुम्हें संयम का ज्यादा उपदेश देने की जरूरत नहीं पड़ेगी और जब तक ऐसा चिन्तन नहीं जगता तब तक हम कितना भी संयम का पाठ पढ़ायें तुम्हारे जीवन में संयम का प्रवेश नहीं हो सकता।

सुख नहीं सुखाभासों में, अब तक छलते आये हैं हम

ध्यान रखना, डंडा मारकर के किसी को भी संयमित नहीं बनाया जा सकता। संयम ऊपर से आरोपण करने की चीज नहीं, यह तो अन्तरंग से प्रकट होने वाली पद्धति है। बाहर से डंडे के बल पर किसी के तनको शान्त किया जा सकता है, लेकिन मनको नहीं। मनको तो अंतरंग की प्रेरणा से ही शान्त किया जा सकता है और यह प्रेरणा तुम्हारे भीतर प्रकट होनी चाहिए। यह तभी होगी जब इन्द्रिय विषयों की असारता का बोध तुम्हें होने लगेगा। थोड़ा विचार करो कि आखिर इनसे मिलता क्या है ? पांच इन्द्रियों के विषयों का भोग हम निरन्तर करते रहते हैं लेकिन कितनी देर तक हमें इनसे सुख मिलता है। अच्छी से अच्छी चीज भी हमें खाने को मिलती है लेकिन कितनी देर तक ? भोजन में सुख तभी तक मिलता है जब तक भूख होती है। आपकी थाली में परोसा गया, आपने भरपेट खा लिया। पेट भर जाने के बाद यदि सामने वाला अत्यन्त अनुनय, आग्रह और मनुहार पूर्वक कहता है कि साहब, यह रसगुल्ला है, एक पीस और ले लो, प्लीज एक पीस। आप कहोगे, माफ करना, अब हो गया। एक पीस तो ले लीजिये। माफ करो, अब तो उल्टी हो जायेगी। अभी तक तो सुल्टी हो रही थी। मतलब क्या हुआ ? उस रसगुल्ले का

रस कहीं चला गया क्या ? पेट भर जाने की बात तो जाने दीजिये जैसे-जैसे आप भोजन करते जाते हैं, पेट भरता जाता है, भोजन की रुचि भी घटती जाती है। पूरे टाइम भोजन में एक सी रुचि नहीं रहती। जब भूख रहती है तो रूखी रोटी भी चावसे खा ली जाती है और जैसे-जैसे पेट भरता जाता है, रस घटता जाता है। यही तो इन्द्रिय विषयों की कहानी है।

किसी भी इन्द्रिय विषय को आप ले लीजिये। कितना भी बढ़िया सुन्दर दृश्य क्यों न हो रोज-रोज देखते-देखते उसमें भी बोरियत शुरू होने लगती है। कितना भी बढ़िया नृत्य क्यों न हो, कितना भी बढ़िया संगीत क्यों न हो, कितनी भी बढ़िया फिल्म क्यों न हो, आप लगातार नहीं देख सकते। कितना भी अच्छा गाना क्यों न हो, आप बारबार नहीं सुन सकते। कितनी भी अच्छी गंध क्यों न हो, हमारा चित्त उसे बारबार परसन्द नहीं करता और कितना भी कोमल स्पर्श क्यों न हो, पर थोड़ी देर तक ही सुख देता है। यह हमारे मन की प्रवृत्ति है। मन हमारे चित्त को भटकाता है। वह हमें प्रेरित व प्रकट करता है उसे एक से कभी शान्ति नहीं मिलती है। हमारी मानसिकता अस्थिर रहती है इसलिए इन्द्रिय विषयों में भी हमें सुख की प्राप्ति नहीं होती। संत कहते हैं जिन इन्द्रिय विषयों की पूर्ति को तुम सुख मान रहे हो वह हकीकत में सुख नहीं, केवल वेदना का प्रतिकार है। जिस सुख की कल्पना में तुम जी रहे हो वह सुख नहीं सुखाभास है। भोजन करने से वह वेदना शान्त हुई तो सुख मिला। पर विचार करो अगर भोजन करने से सुख मिलता तो तुम थाली को अपने सामने से कभी हटाते ही नहीं। भोजन तुम्हें तभी तक सुख देगा जब तक कि तुम्हें भूख है। पांचों इन्द्रियों के जो जो विषय हैं, उन्हें पाने के लिए हमारे मन में जो एक व्याकुलता उत्पन्न होती है उस व्याकुलता जन्य वेदना का प्रतिकार इन्द्रिय विषयों के माध्यम से होता है। संत कहते हैं ध्यान रखना, यह वेदना कभी खत्म नहीं होती। एक वेदना पूरी होती है तो उसका स्थान दूसरी वेदना ले लेती है और दूसरी जब पूरी होती है तो उसके स्थान पर तीसरी वेदना अपना स्थान बना लेती है और यह चक्र चलता रहता है। एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, तीसरी के बाद चौथी और चौथी के बाद पांचवी। अनवरत यह क्रम चलता है और सारी जिन्दगी अतृप्ति की मरीचिका में हम दौड़ते रहते हैं। मिलता कुछ भी नहीं। इसका अन्तर्विश्लेषण करें।

बेरस होंग विपाक समय अति, सेवत लागें नीके

विचार करो, तो इनकी निरर्थकता तुम्हें दिखने लगेगी। तब समझ में आयेगा कि मैं वस्तुतः कितनी नादानी में जी रहा था। अपने जीवन से कितना अधिक बेईमान था। काश यह नादानी हमें समझ में आ जाये तो हमारे जीवन का रंग बदल जाये, हमारे जीवन का ढंग बदल जाये और यदि यह परिवर्तन होता है तो हमारे जीवन में एक बहुत बड़ी उपलब्धि घटित होगी। पांच इन्द्रियाँ हैं। मात्र एक इन्द्रिय विषयों के अधीन रहने वाले प्राणी का जीवन भी विनाश को प्राप्त होता है। संत कहते हैं इन्द्रिय विषय वेदना तुम्हारे जीवन में होती है तो उसका प्रतिकार करना पर होशो हवाश में। मानकर के चलो कि मैं इनके प्रतिकार का कितना भी यत्न करूँगा, पर इनका पूर्ण प्रतिकार होना संभव नहीं है, इसलिए अपनी इन्द्रियों को संयत बनाने का प्रयत्न करो। अपनी प्रवृत्ति को नियंत्रित करो। अन्तहीन दौड़ में दौड़ने की चेष्टा मत करो क्योंकि उसका परिणाम शून्य है। जिस दौड़ की कोई मंजिल नहीं उसे दौड़ने का कोई मतलब नहीं। वहीं दौड़ो जहां कोई मुकाम हो, इसका तो कोई परिणाम ही नहीं। क्यों दौड़ो ? थोड़ा विचार करो कि एक-एक इन्द्रिय विषय के चक्कर में फंसने वाले प्राणियों की क्या हालत होती है। स्पर्श इन्द्रिय के लिये हाथी, रसना इन्द्रिय के लिये मछली, घ्राण इन्द्रिय के लिये भंवरा, चक्षु इन्द्रिय के लिये चमरी और कर्ण इन्द्रिय के लिये मृग/हिरणी का उदाहरण शास्त्रों में आता है कि अपनी इन्द्रिय के विषयों में अन्ध बने हुये ये प्राणी किस तरह अपने जीवन को बरबाद कर देते हैं।

इन्द्रिय विषयों के मोह में फंस कर हाथी जैसा बलशाली प्राणी भी गड्ढे में गिर जाता है। कहते हैं हाथी को पकड़ने के लिये कृत्रिम हथिनी बनाई जाती है और उस हथिनी के स्पर्श सुख को पाने के मोह में हाथी दौड़ता है और गड्ढे में गिर कर सारी जिन्दगी को परतन्त्र बना लेता है। बड़ा खतरनाक है। यह मनुष्य भी इस स्पर्श सुख के वशीभूत होकर उस लालसा को पूर्ण करने के लिए न जाने कितने अनर्थ कर डालता है। उसके जीवन के शील, संयम, और सदाचार मर्यादा के नियंत्रण के अभाव में विनष्ट हो जाते हैं। उन्हें नियंत्रित करने की आवश्यकता है। पांच इन्द्रियों में दो इन्द्रियां कामेन्द्रिय

कही गई हैं और तीन इन्द्रिय भोगेन्द्रिय। स्पर्शन और रसना इन दो इन्द्रियों को कामेन्द्रिय कहा गया है और घ्राण, चक्षु और कर्ण इन तीन इन्द्रियों को भोगेन्द्रिय कहा गया है। शेष इन्द्रियां इतनी खतरनाक नहीं हैं। घ्राण, चक्षु और कर्ण ये भोगेन्द्रियाँ हैं, अपने विषयों को भोगती हैं और थोड़ी देर में संतुष्ट हो जाती हैं। लेकिन स्पर्शन और रसना ये बड़ी खतरनाक इन्द्रियाँ हैं। इनकी कामना मनुष्य को सतत् अतृप्त करती रहती है। इनकी कामनाएं कभी नष्ट नहीं होतीं।

चन्द पलों के सुखाभास ने खिलवाये कितने कोड़े ?

एक राजा था। राजा के लिये रोज कोमल कोमल पत्तियों को एकत्रित करके सेज बिछाई जाती थी राजा उस पर रोज आराम करता था। रोज का यह क्रम बना हुआ था। एकदिन माली के मन में आया यह कोमल-कोमल फूलों का कैसा सुख है ? राजा रोज-रोज इसे लेता है, थोड़ा इसका भी तो अनुभव लिया जाये। राजा तो रात में आकर सोयेगा। बहुत समय है, अभी तो सांझ ढलने को है। क्यों न मैं थोड़ी देर आराम कर लूँ। फिर ठीक कर दूंगा, राजा को थोड़े ही पता चलेगा। वह सेज पर लेटा और उसके सुखद स्पर्श में मुग्ध हो गया। लेटा क्या सो गया, नींद लग गई। राजा समय पर आया। देखता क्या है, यह महानुभाव लेटा है। राजा एकदम आगबबूला हो गया। उसने सोचा, असली मजा तो यही लेता है। मुझे तो इसकी जूठन का उपभोग करने को मिलता है। राजा एकदम तमतमा गया और कोड़े उठाकर उस पर कोड़े बरसाना शुरू कर दिया। माली के ऊपर जैसे ही कोड़े पड़े उसके होश उड़ गये। देखा सामने राजा है जो साक्षात् यमदूतकी तरह है। लेकिन एक ही क्षण में उसने अपने आपको समहाला और जैसे ही राजा ने कोड़ा बरसाया, उसने जोर से हंसना शुरू कर दिया। राजा जितनी जोर से कोड़ा मारे वह उतनी ही जोर से हंसे, खिलखिलाये। राजा को बात समझ में नहीं आई। वह और गुस्सा हो गया। लगा वह और जोर से कोड़े मारने। जब अनेक कोड़े मारने के बाद भी वह लगातार हंसता रहा तो राजा ने अपने कोड़े को रोका और पूछा, यह बता, तू हँस क्यों रहा है ? तुझे तो रोना चाहिए। उसने कहा महाराज मैंने देख लिया कि जिन्दगी में थोड़ी देर के लिये सेज पर चढ़ा तो मुझे इतने कोड़े पड़े। मैं तो अपने आपको भाग्यवान समझ रहा हूँ कि

इतने ही कोड़े में निपट गया। आप तो रोज इन सेजों पर चढ़ते हैं, पता नहीं, आपको कितने कोड़े पड़ेगे ? तब समझ में आयेगा। राजा की आंख खुल गई। वस्तुतः जिस कल्पकुसुम विषयों की चाहमें हम भाग रहे होते हैं पागल होते हैं उसकी ओट में जो कोड़े छिपे हैं उसकी तरफ हमारा ख्याल नहीं जाता। विषयों की प्रवृत्ति से उत्पन्न आकुलता और तदजन्य पाप के बन्ध का जिसे बोध होता है वह कभी विषयों में विमुग्ध नहीं हो सकता। क्या करें ? रस लेते समय हमें ध्यान नहीं रहता। बाद में समझ में आता है। संत कहते हैं वहीं सावधान होओ, कदाचित इस सावधानी का ख्याल हो जाये तो विषयों की प्रवृत्ति में तुम्हारी प्रगाढ़ता नहीं होगी। तुम्हारे अन्दर उदासीनता का भाव आ जायेगा और यह उदासीनता का भाव ही तुम्हारे पाप के बन्धन को शिथिल बनाने में निमित्त बन जायेगा। तुम्हारी प्रवृत्ति को सचेत बनाने में सहायक हो जायेगा। उसकी तरफ तुम्हारी दृष्टि एकबार केन्द्रित हो जाये तो सारा काम हो जाये।

अभी हमने यहाँ स्पर्श इन्द्रिय की लोलुपता का उदाहरण देखा। रसना इन्द्रिय के लिये मछली का उदाहरण दिया जाता है मछली को आटा बहुत पसन्द है, यहां भी लोग आटा बहुत डालते हैं। पर भैया, ऐसा आटा मत डालना जिससे कौए, बिल्ली और बगुले मछली को ही निगल जायें। जो लोग मछली को पकड़ते हैं, वे जानते हैं। कहते हैं पुराने समय में वंशी डालकर मछली को पकड़ा जाता था और उसी वंशी में आटा लगा दिया जाता था। वंशी के कांटे में लगे आटे के स्वाद के मोह में मछलियां वहां आती हैं और जैसे ही उसमें मुंह डालती हैं, आटे की ओट में छिपा कांटा उनकी जिन्दगी का कांटा बन जाता है। उस आटे के मोह में आने वाली मछलियों को अपनी जिन्दगी खोनी पड़ती है। बन्धुओ, इन मछलियों की जाती हुई जान तो हम रोज देखते हैं लेकिन अपनी रसना इन्द्रिय की लालसा में जिन्दगी को विपत्ति में ढकेलते हुये हम नहीं देख पाते। लोग अपनी इस रसना इन्द्रिय की तीव्र लालसा में न जाने कितने जघन्य पाप और अत्याचार करने को प्रवृत्त हो जाते हैं। काश! हम यहां सावधान होते तो हमारे जीवन में संयम आ जाता फिर ज्यादा कुछ उपदेश देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन मछलियों को आटा तो दिखता है पर उसकी ओट में छिपा कांटा नहीं दिखता। काश। उस कांटे को हम देखने की कोशिश करें।

मदहोशी में होश कहाँ ?

प्राण इन्द्रिय के लिये कहा जाता है कि भौरा गन्ध का लोभी होता है। उसे गन्ध बहुत प्रिय होती है। भौरा सांझ ढलते समय जब कमल पर बैठता है तो कमल की पांखुड़ियाँ सिकुड़ने लगती हैं। भौरा सोचता है सुबह होगी, कमल खिलेगा, फिर उड़ जाऊंगा। तब तक मैं इस गन्ध का पान क्यों न करूँ ? और उसी चक्कर में वह भौरा बाहर नहीं निकलता, कमल मुकुलित हो जाता है, कमल बन्द हो जाता है और रात में उसका वहीं दम घुट जाता है। सुबह होने से पहले उसके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। वस्तुतः यह तीव्र असाक्त का नतीजा है। जो भौरा काठ को छेदने की सामर्थ्य रखता है वह कमल को भी नहीं छेद पाता।

बाल बन गया खुद का काल

बन्धुओ, हमारी ऐसी ही स्थिति है। जिस मनुष्य का चित्त किसी वस्तु पर आसक्त हो जाये, उसकी बुद्धि और विवेक नष्ट हो जाते हैं, उसकी आत्मशक्तियाँ ही कुण्ठित हो जाती हैं और विवेकहीन/बुद्धिहीन व्यक्ति कभी कुछ उपलब्धि अर्जित नहीं कर सकता। मैंने सुना है, एक गाय होती है, कभी देखा तो नहीं है। उसके बाल बहुत सुन्दर होते हैं। वह जब दौड़ती है, तब झाड़ियों के झुरमुट में उसकी पूँछ फंसती है, बाल उलझते हैं, तो वह ठिठक कर खड़ी हो जाती है, कहीं मेरे भागने से मेरे बाल न टूट जायें। बाल टूटेंगे तो मेरा यह सौन्दर्य बिखर जायेगा। वह अपने सौन्दर्य को निखारने के मोह में वहीं ठिठक कर रह जाती है और शिकारी उसकी जान भी ले लेते हैं रूप का मोह बड़ा विचित्र मोह है।

संगीत : वशीकरण या मारण मंत्र ?

कर्ण इन्द्रिय की लोलुपता पर भी तनिक दृष्टिपात करें। हिरण संगीत का बड़ा प्रेमी होता है। कहते हैं हिरण का शिकारी मधुर तान छेड़ता है। वह तान को सुनकर लीन हो जाता है और एक दम काठ की तरह कीलित सा हो जाता है। जैसे ही हिरण श्रवण में लीन होता है शिकारी उसे अपने बन्धन में ले लेता है और उसके अन्त की कथा तो आपके लिए अनजानी नहीं।

यह तो एक-एक इन्द्रिय की अधीनता से अपने जीवन को व्यर्थ में नष्ट करने वाले एक-एक प्राणियों के उदाहरण हैं। अपना हिसाब लगा लेना, कौन-कौन सी इन्द्रिय की चाकरी हम नहीं करते ? पांचों इन्द्रियों के दास हैं, उसका क्या होगा ? विचार करें। हम तो किसी में पीछे नहीं हैं, पांचों इन्द्रियों के विषयों में आकण्ठ दबे हुये हैं। नतीजा क्या हो ? गृहस्थ को जो संयम का उपदेश दिया गया है। वह केवल इसलिए कि अपने जीवन को शील, संस्कार और मर्यादाओं में बांध करके रखो। यदि तुम्हारे जीवन की मर्यादा नष्ट भ्रष्ट हो जायेगी तो तुम अपने जीवन में कुछ भी उपलब्ध नहीं कर सकते। थोड़ा विचार करो, तुमने क्या नहीं किया ? और क्या नहीं पाया ? अब तक का अतीत तो तुम्हें यही बताता है। **आचार्य कुन्दकुन्द** कहते हैं -

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्सवि कामभोगबंधकहा।

एयत्तस्सुवलंभो णवरि सुलहो विहत्तस्स ॥ 4 ॥ - समयसार

आजतक के अतीत में तुम्हारे द्वारा काम, भोग तथा बन्ध की कथायें जन्म-जन्म में सुनने में आईं, अनुभव में आईं। यदि आज तक कुछ अज्ञात रहा है तो तुम्हारे भीतर का तत्त्व रहा है। कुछ अपरिचित रहा है तो तुम्हारे भीतर का तत्त्व रहा है। आजतक यदि तुमने कुछ अनुभव नहीं किया है तो वह तुम्हारे भीतर का तत्त्व है। संत कहते हैं सुनना चाहते हो तो उसे सुनो जो अब तक अश्रुत रहा है। परिचय पाना चाहते हो तो उसका करो जो आज तक अननुभूत रहा है। आत्मा के स्वरूप को जानने के बाद व्यक्ति की बुद्धि विकारी नहीं बनती, वह भ्रमित नहीं होता। वह इन्द्रिय को जानता है, मानता है कि ये इन्द्रिय विषय मुझे संतृप्त नहीं कर सकते। ये इन्द्रियाँ मेरी आत्मा के ज्ञान के साधन हैं। मैं तो उनका मालिक हूँ, वे तो मेरी सेविकाएँ हैं। वे मेरी गुलाम हैं, उनको मेरे चिन्तन में रहना चाहिए। मुझे उनके नियन्त्रण में नहीं रहना चाहिए। लेकिन क्या करें ? हम तो उनके ही चिन्तन में हैं।

अगर मालिक नौकर के नियन्त्रण में हो जाय तो फिर क्या हाल होगा ? बताने की जरूरत नहीं है। और हो यही रहा है। मालिक नौकर बन गया है और नौकर मालिक बना हुआ है। जागो, आत्मा को जागृत करो। जिसकी चेतना जाग जाती है उसके

इन्द्रिय विषय अपने आप शिथिल हो जाते हैं। उसकी बहिर्मुखता नियन्त्रित हो जाती है। उसका चित्त अन्तर्मुखी हो जाता है और जैसे ही चित्त में अन्तर्मुखता का प्रकाश प्रकट होता है, जीवन निहाल हो जाता है। थोड़ा विचार तो करो। इस अन्तर्मुखता के लिये हमें अन्तर्विश्लेषण करने की जरूरत है। पुनः पुनः विचार करने की जरूरत है कि मैंने आजतक क्या किया ? और उसका नतीजा क्या मिला ?

हम मोड़ें अपनी प्रवृत्ति को

गुरुजी ने क्लास में सबक दिया कुत्ते पर लेख लिखकर लाना। हर बच्चा कुत्ते पर लेख लाया। एक बालक का लेख बड़ा विचित्र था। गुरुजी ने लेख को जांचा परखा और कहा लेख तो तुमने बहुत सुन्दर लिखा, लेकिन ठीक ऐसा ही लेख पिछले वर्ष तुम्हारा बड़ा भाई लेकर आया था। उस लेख और इस लेख में एक हलन्त का भी अन्तर नहीं है। एक मात्रा का भी अन्तर नहीं है। क्या वजह है ? उसने कहा गुरुजी, कुत्ता वही है, तो लेख दूसरा कहां से आयेगा ? बन्धुओ, पता नहीं यह किस छात्र के साथ घटित हुआ। पर जब हम जीवन के सन्दर्भ में विचार करते हैं तो हमें तो यहीं लगता है कि हर व्यक्ति उन्हीं पंच इंद्रिय रूपी विषयों के कुत्ते पर लेख लिखता आ रहा है, जीवन में नया कुछ नहीं है, सब पुनरावृत्ति है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आजतक उसी कुत्ते पर ही तो लेख लिखते आये हो। अरे भाई समझो, सम्हलो और स्वयं को पहचानो। अब कुछ नया करने का संकल्प, साहस अपने अन्दर जागृत करो। तब तुम्हारे जीवन में कुछ उपलब्धि घटित हो सकेगी। अन्यथा यह जीवन आया और यूँ ही व्यतीत हो जायेगा। अनन्तकाल हमने अन्धकारपूर्ण तरीके से जीवन जीकर बिता दिया। आज हमें ज्ञान मिला है तो अपने जीवन की दिशा को थोड़ा परिवर्तित करना सीखो। अपनी शक्ति और परिस्थिति के अनुरूप जितना संयमित हो सको होओ।

एक बात ध्यान रखना, मनुष्य के अन्दर यदि इच्छाशक्ति जागृत हो जाये तो उसके लिये असम्भव कुछ भी नहीं। सबकुछ हो सकता है। बशर्ते, लालसा बन्द हो, लालसा खत्म हो। हमारी एक प्रवृत्ति है जो हमें संसार में प्रवृत्त करती है और एक प्रवृत्ति है जो हमारे संसार को समेटती है। जो हमें संसार में प्रवृत्त करती है वह बहिर्मुखी प्रवृत्ति है

और जो प्रवृत्ति हमें मुक्त बनाती है वह अन्तर्मुखी प्रवृत्ति है। ध्यान रखना, बहिर्मुखी प्रवृत्ति बन्धन में डालती है और अन्तर्मुखी प्रवृत्ति से व्यक्ति मुक्त हो जाता है। आपने देखा होगा, आपके घर में नल होता है। नल की टॉटी खोलते हैं, एक तरफ खोलते हो तो पानी आना शुरू हो जाता है और दूसरी तरफ घुमाते हो तो पानी आना बन्द हो जाता है। इसका मतलब क्या है ? अगर हमारी प्रवृत्ति बाहर की ओर होगी तो कर्मों का बन्धन होगा और अन्दर की ओर मुड़ोगे तो बन्धन कटेगे। बस, कर्मों की धारा रोकना चाहते हो तो भीतर के नल को बन्द करो जो अनादि से खुला हुआ है। जो विषयों के माध्यम से प्रवाहित हो रहा है उसे रोको, उस पर ब्रेक लगाओ। उस पर संयम रखो। तब तुम्हारा जीवन धन्य हो सकेगा। अन्यथा अनादिकाल से हमने न जाने क्या क्या बिता दिया और क्या क्या भोगा ? हम कह नहीं सकते।

रूपक नहीं रूप यह अपना

एक रूपक जो जैन परम्परा का बड़ा प्रसिद्ध रूपक है, इस सन्दर्भ में आप सबसे कहने का मन हो रहा है। आपने मन्दिरों में देखा जरूर होगा। आप उसे मेरे हिसाब से समझने की कोशिश करिये और उसे अपने जीवन में जोड़कर देखने का प्रयत्न कीजिये। एक युवक समुद्री जहाज में यात्रा कर रहा था। अचानक उस समुद्र में तेज ज्वार आया और उस समुद्री ज्वार के प्रवाह से उसका जहाज बच नहीं सका। एक ही ज्वार में उसका जहाज टुकड़े-टुकड़े हो गया। सारा सामान समुद्र में डूब गया। उसने कहा - हे प्रभु, अब क्या होगा ? लेकिन तभी उसे एक बहता हुआ तख्ता दिखाई पड़ा। उसके सहारे जैसे-तैसे तैरकर वह समुद्र के किनारे जा पहुंचा। सूर्य की किरणें उस पर पड़ी। कुछ ताजगी, स्फूर्ति, कुछ चेतना सी जगी। उठकर खड़ा हुआ। यह सोच भी नहीं पाया कि मैं कौन हूँ, कहां से आया हूँ ? तभी देखा कि पीछे से एक विकराल हाथी, काला मेघ सरीखा, पहाड़ सी काया वाला तेजी के साथ सूड़ हिलाता हुआ, भुनभुनाता हुआ उसकी ओर आ रहा है। अब क्या है ? पीछे से हाथी को आता देख जिधर दिशा मिली, तेजी से भागा। हाथी भी पीछे-पीछे भागता हुआ आ रहा है। भागते-भागते वह हॉफने की स्थिति में आ गया। कुछ भी नहीं दिखा। एक बड़ा बरगद का वृक्ष दिखा और वह उसकी शाखा को पकड़ कर

लटक गया। जैसे ही वह बरगद के पेड़ पर चढ़ा, पीछे-पीछे हाथी भी आ गया। हाथी ने सोचा इस पेड़ने इसे शरण दी है, तब यह भी मेरा शत्रु है, यह भी नहीं बच सकेगा और अपनी सूड़ से उसने पेड़ को हिलाना शुरू कर दिया। जैसे ही हाथी ने पेड़ को हिलाना शुरू किया, उस पेड़ पर मधुमक्खियों का छत्ता था, उन मधुमक्खियों ने सोचा, इस आगन्तुक के कारण हम पर संकट आया है। सारी की सारी मधुमक्खियां उसके शरीर पर चिपट गईं, चुट-चुट कर काटने लगीं, कुछ हाथ में, कुछ पांव में, कुछ पैर में, कुछ पीठ में, कुछ छाती में, कुछ सिर में, कुछ आंख में। वह एकदम घबड़ा गया, हे प्रभु यह क्या हुआ ? नीचे देखा, एक भयंकर कुआ था जिसमें चार-चार सांप अपनी जीभ लपलपाते खड़े थे। बड़ी दयनीय स्थिति थी। उसने आसमान की ओर देखा तो दिखा, कि जिस शाखा को उसने पकड़ रखा है उसे सफेद और काले दो चूहे कुतर-कुतर कर काट रहे हैं। उसने कहा, हे प्रभु अब क्या होगा ? अब जैसे ही मुख से उसने प्रभु का नाम लिया कि ऊपर से एक मधुबिन्दु टपका। आहा ! अद्भुत है, बड़ा मधुर है इसका स्वाद। ऐसा तो मैंने आजतक अनुभव ही नहीं किया। भूल गया कि हाथी अभी भी इस वृक्ष को हिला रहा है, मधुमक्खियां अभी-भी उसके शरीर को चूरे हुये हैं, वे चूहे अभी-भी उसकी शाखाओं को कुतर रहे हैं और सांप अभी भी उसे खाने के लिये जीभ लपलपा रहे हैं। सबकुछ भूल गया। मधुबिन्दु के स्वाद में खो गया। तभी एक विद्याधर उधर से गुजरा। अपनी पत्नी के साथ विमान से जा रहा था। पत्नी ने उसकी दशा को देखकर कहा, प्रभु देखिये इसकी कैसी दशा है ? आप उसकी रक्षा कीजिये। पत्नी की प्रेरणा पाकर पति अपने विमान को एक ओर स्थिर करके खड़ा हो गया और उसे आवाज देते हुये बोला, बन्धु ! तुम्हारी दशा बड़ी दयनीय है। देखो, हाथी वृक्ष को हिला रहा है, मधुमक्खियां तुम्हें चूर-चूर कर खा रही हैं और यह शाखा भी अब-तब में गिरने ही वाली है। तुम्हारी जिन्दगी मौत के शिकंजे में कसी है। यदि तुम चाहो तो मेरे विमान पर आ जाओ। मेरा हाथ पकड़ लो, तुम्हें कुछ नहीं होगा। उसने कहा, बस आता हूँ। एक बूंद मधु का मुझे और ले लेने दो। विद्याधर ने कहा, हो गया भई, अब आ जाओ। उसने कहा, बस एक बूंद और। चलो भाई, दूसरा भी हो गया। अब एक बूंद और। विद्याधर समझ रहा है, भाई देखो तुम्हारी क्या हालत हो रही है ?

अब भी आ जाओ लेकिन अब तो बातों की भी उपेक्षा प्रारम्भ हो गई और कोशिश जारी है कि एक बूंद मधु भी व्यर्थ होकर न गिरे। सारी बूंदे मेरे मुंह में आती रहें। वह बूंद-बूंद को लपकने की कोशिश करता रहा। विद्याधर का मन और दयार्द्र हो उठा और उसने कहा, ऐसे नहीं आते तो मैं लपक कर खींच लेता हूँ। लेकिन जैसे ही लपककर खींचना चाहा, उसने पाँव से दुत्कार दिया। कहा, कहां लगे हो तुम ? इतना बढ़िया मधु का स्वाद और कहां तुम्हारा विमान ? रहने दो मुझे मेरे भाग्य पर। इतना उसने कहा, और उसी समय धड़ाम की आवाज आई। शाखा टूटी और वह अभागा व्यक्ति उन सांपों का ग्रास बन गया।

एक बूंद की चाहत में हमने सबकुछ खोया है

रोचक लगी आपको यह कहानी ? लेकिन पता है यह कहानी किसकी है ? यह कहानी हमारी तुम्हारी सबकी है। जो इस संसार की विचित्र दशा का निरूपण करती है। हम मन्दिरो में इस रूपक को देख तो लेते हैं, लेकिन इसके अर्थ को पहचानने की कोशिश नहीं करते। काश इसे हमने समझने की कोशिश की होती तो हमारे जीवन की राह बदल जाती। वस्तुतः यह संसार एक विशाल सागर है। जिसमें जीने वाला जीव देह रूपी जहाज में भ्रमण करता है। अचानक आने वाला ज्वार मृत्यु है। जब मनुष्य की मृत्यु होती है, इस देह का जहाज भी टूट जाता है लेकिन मृत्यु होने के उपरान्त हम विग्रहगति करते हैं, अपने सूक्ष्म शरीर रूप तख्ते के सहारे एक जन्मस्थिति से दूसरी जन्मस्थिति में जाते हैं और जैसे ही हम वहां जन्म लेते हैं, मृत्यु रूपी काल का हाथी हम पर धावा बोल देता है। वह हमारा पीछा करना शुरू करता है। हम काल के हाथी से बचने के लिये जिस वृक्ष के सहारे जाते हैं, वह है हमारी आयु। इस आयु रूपी वृक्ष की जिन दोनों शाखाओं को हम पकड़ते हैं उन शाखाओं को शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के दो चूहे कुतर-कुतर कर काटते रहते हैं। उस पर रहने वाली मधुमक्खियां ही तुम्हारे परिजन, पुरजन हैं। जो तुमसे पूरी तरह चिपटे हुये हैं और मधु की जो बूंद है वह है विषयों का सुख। जिसे तुम कभी खोना नहीं चाहते। नीचे जो कुआं है वह चतुर्गति का कुआं है जिसमें चतुर्गति के प्रतीक स्वरूप चार-चार सांप लपलपाते रहते हैं। संसार का हर प्राणी इस जीवन वृक्ष से लटक

कर केवल विषयों के मोहका स्वाद चखने में रम जाता है। बीच-बीच में हम जो प्रभु का नाम लेते हैं वह है हमारा पुण्य जिसके फलस्वरूप मधु का रस मिलता है और हम उस मधुबिन्दु में मुग्ध हो जाते हैं और अपनी सारी जिन्दगी उसी में गवां देते हैं। एक दिन हमें काल के गाल में जाना ही पड़ता है। आजतक हमारे जीवन के साथ यही और केवल यही होता रहा है। हमने केवल विषयों में सुख माना है। विषयान्ध बने रहे और अपने जीवन को केवल अन्धकूप में गिराया है। काश! आज भी हममें कुछ समझ आ जाये। हमारी बुद्धि जागृत हो जाये तो फिर हमें किसी उपदेश की ज्यादा आवश्यकता और अपेक्षा नहीं रहेगी लेकिन यदि ऐसी बुद्धि और भावना अपने अन्दर जागृत नहीं कर सकते तो हमारे जीवन का कल्याण कभी नहीं हो सकता।

विषयों का चक्कर : चक्कर का विषय

बन्धुओ, संयम के महत्त्व को समझो। इन्द्रिय विषयों की निरर्थकता को समझो। उससे होने वाली हानि को पहचानने की कोशिश करो। ध्यान रखो, विष खाने वाला तो केवल एक बार मरता है पर विषय खाने वाले जन्म-जन्म में मरते हैं। विष का विष केवल एक जन्म तक होता है? विषयों का विष जन्म-जन्म तक रहता है। उसे हम समझें। आजतक हमारी आत्मा ने विषयों का जो दंश झेला है, उसके कारण जो दुष्परिणाम हमें भोगने पड़े हैं उसकी तरफ हमारा यदि थोड़ा भी चिन्तन हो जाये तो हमें ज्यादा समझने और समझाने की आवश्यकता नहीं होगी। लेकिन क्या करें, हमारा चित्त तो अन्धा बना हुआ है। हम तो समझ ही नहीं पाते। पंच इन्द्रिय विषयों के चक्कर में हम कुछ इस कदर उलझ गये हैं कि हमें कुछ भी समझ में नहीं आता। बहुत पहले मैने एक कविता लिखी थी, 'घनचक्कर'। आज उसे सुना देना चाहता हूँ। थोड़ा हिसाब लगाना कि हमारी स्थिति कहां है?

‘आदमी के पास है, जीभ

जीभ के साथ है खान-पान व्यंजन का चक्कर

आदमी के पास है नाक, नाक के साथ है

नयी-नयी सुगन्ध, जैसे इत्र फुलेल, चन्दन का चक्कर,

आदमी के पास हैं कान

कान के साथ है मधुर संगीत,

लय-ताल के श्रवण का चक्कर

आदमी के पास हैं आंख, आंख के साथ है

रूप-लावण्य के दर्शन का चक्कर,

आदमी के पास शब्द वचन की है शक्ति

कहीं भी कुछ भी बकता है,

बुराई करते-करते नहीं थकता है,

वचन के साथ है अथकन का चक्कर

आदमी के साथ है मन, मन के साथ है

राग, द्वेष, भोग-विलास, छल-कपट का चक्कर

आदमी के पास जब तक हैं प्राण,

प्राणों के साथ लगा है सधन चक्कर

और इन चक्करो के बीच चकराते-चकराते

आदमी का नाम हो गया है ‘घनचक्कर’।

भैया विषयों के चक्कर लगाने वाले घनचक्कर ही है। हम यह चक्कर आज से नहीं अनादि से लगा रहे हैं फिर भी अपने आपको होशियार मान रहे हैं। काश! यह हमारी घनचक्करी खत्म हो और हम अपने जीवन को सम्यक् दिशा में बढ़ाने का प्रयत्न करें।

बन्धुओ! संयम हमारा साध्य बनना चाहिए। संयम की तरफ हमारी दृष्टि होनी चाहिए। वही हमारे जीवन का सुरक्षा कवच है, जिसके माध्यम से हम अपने जीवन का उत्थान कर सकते हैं। अपने चित्त और चेतना का रूपान्तरण कर सकते हैं। अपनी आत्मा के निर्मल स्वरूप को अभिव्यक्त करने में समर्थ हो सकते हैं और यदि संयम हमारे जीवन में नहीं रहा तो हमने अपने इस मनुष्य जन्म को निरर्थक कर दिया।

इन्द्रिय संयम, प्राणी संयम, ऐसा हो संकल्प हमारा

बन्धुओ, भवस्य सारं किं ? व्रतधारणं । भव का सार केवल यही है कि हम व्रत संयम को अंगीकार करें। संयम ही हमारे जीवन के कल्याण का आधार है। हम सबके चित्त में ऐसा संयम हो कि हम अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित करें। इन्द्रिय संयम हमारे जीवन में विकसित हो और हम प्राणियों के प्रति सावधान हों। प्राणी संयम हमारे जीवन में हो तो हम अपने जीवन का कल्याण सुनिश्चित रूप से कर सकते हैं। ऐसा संयम हम सबके जीवन में प्रतिष्ठित हो। संयम के संस्कार से आपूरित होकर हम अपनी आत्मा की सामर्थ्य को विकसित कर सकें इसी शुभ भावना के साथ अपनी वाणी को यहीं विराम दे रहा हूँ।



तप

गृहस्थों के षट् आवश्यकों की चर्चा आप सभी के बीच की जा रही थी

देवपूजा गुरुपास्ति, स्वाध्यायः संयमस्तपः ।

दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने ॥

तप चाहें सुरराय

जिनेन्द्र भगवान की पूजा-आराधना, गुरुओं की उपासना, स्वाध्याय और संयम का आचरण ये हमारे जीवन के रूपान्तरण के आधार हैं। पांचवे क्रम में आता है तप। तप हमारे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। आत्मा की शुद्धि के लिये तप अत्यन्त अनिवार्य है। जैसे एक अकिंचन मिट्टी को आंच में तपा देते हैं तो तप की आंच में पक जाने के बाद वह मिट्टी जिसे पानी बहाकर अपने साथ ले जाता था उसी मिट्टी में उस पानी को अपने भीतर समाने की सामर्थ्य आ जाती है। यह तप की महिमा है। यह तप की गरिमा है। संत कहते हैं जन्म जन्मान्तरों में अर्जित किया गया पापकर्म तप के द्वारा वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे हल्की सी चिंगारी से रुई का ढेर या तृण का अम्बार पल में नष्ट हो जाता है। तप में वह ताकत है जिसके द्वारा हम अपनी आत्मा में छाई हुई विकृतियों को दूर कर सकते हैं। अपने चित्त की कालिमा और कलुषता को नष्ट कर सकते हैं। जैसे स्वर्ण निखर उठता है ऐसे ही तप के माध्यम से कर्म कालिख को दूर कर हम आत्मा को कुन्दन जैसा बना सकते हैं। जितनी भी महान विभूतियां हुई हैं, वे इसी तपश्चरण के माध्यम से कल्याण को प्राप्त हुई हैं इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। संत कहते हैं करोड़ों जन्मों में किये गये पापको तप के द्वारा निरर्थक किया जा सकता है। लेकिन वास्तविक तप साधुओं के जीवन से जुड़ा है। साधुओं का मार्ग त्याग का मार्ग है। तपस्या का मार्ग है, साधुओं के उत्तरगुणों में तपस्या को रखा गया है। लेकिन बन्धुओ गृहस्थों को भी तपस्वी बनने के अभ्यास के लिये तप का उपदेश दिया है। ऐसा नहीं कि साधु ही तप करते हैं, गृहस्थ भी तप करते हैं और करना भी चाहिए। आप लोग भी करते हैं इसीलिए आपके कर्त्तव्यों में तप को एक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य निरूपित करते हुये निरन्तर तप-त्याग के मार्ग को अंगीकार करने की प्रेरणा दी गई है।

पहले समझें तप का स्वरूप

सर्वप्रथम तप के स्वरूप को समझें और यह जानें कि अपने जीवन में तपस्या कैसे हो ? हमारे यहां ऐसे बहुत से लोग हैं जो तपस्या ही नहीं करते। त्याग और तपस्या के नाम से ही उनके हाथ पांव फूलने लगते हैं। बहुत से ऐसे लोग हैं जो तपस्या करते तो हैं पर उसके स्वरूप को नहीं समझ पाते। नतीजा यह निकलता है कि तप के स्वरूप को न समझने के कारण, वे तपश्चरण से दूर हटते जाते हैं, पीछे रह जाते हैं। कुछ लोग तपस्या करते हुये भी उसके स्वरूप से अनभिज्ञ रहने के कारण उसका फल नहीं पा पाते। बन्धुओ दोनों प्रकार की कमियों को हमें दूर करना चाहिए। संत कहते हैं -

तन मिला तुम तप करो, करो कर्म का नाश।

रवि-शशि से भी अधिक है, तुममें दिव्य प्रकाश ॥ - आचार्य विद्यासागर

तुम्हें मनुष्य तन मिला। यह मानव जीवन आत्मोद्धार का एक बहुत अच्छा उपाय है। इसके मूल्य और महत्त्व को समझो। यह मनुष्य जीवन विषय, भोग और विलासिता में रचने-पचने के लिये नहीं मिला। यह मनुष्य जीवन तो त्याग और तपस्या के लिये मिला है हम वैराग्य भावना में पढ़ते हैं -

राचन जोग स्वरूप न याको विरचन जोग सही है।

यह तन पाय महा तप कीजै, यामें सार यही है ॥ - वैराग्यभावना¹⁰

तप ही ले जायेगा मोक्ष नगरिया

तन को पाकर के तप करो, तन केवल उसीके लिये मिला है। तन का उपयोग करके जो व्यक्ति त्याग और तपस्या के मार्ग में लगते हैं वे अपने जीवन का कल्याण कर लेते हैं और जो त्याग और तपस्या को अपने लिये कष्टदायी जानकर केवल भोग और विलासिता में ही उलझे रहते हैं उनके जीवन का कभी उद्धार नहीं हो सकता। मनुष्य जीवन को कड़वी तुम्बी की तरह कहा गया है। कड़वी तुम्बी को यदि कोई खाले तो उसे फुड प्वाइजन हो जाता है। आदमी के प्राण निकल जाते हैं। लेकिन इसी कड़वी तुम्बी का यदि हम तैरने में उपयोग करें तो उसके सहारे बड़े-बड़े नदी और नाले को भी पार किया

जा सकता है। संत कहते हैं, यही स्थिति तुम्हारे जीवन के साथ है। यदि तुम अपने जीवन का उपयोग करोगे तो भवसागर से तर जाओगे और उपभोग करोगे तो मर जाओगे। जीवन का उपयोग करो, उपभोग नहीं। जीवन का सच्चा उपयोग क्या है ? धर्मानुकूल जीवन जीते हुये त्याग और तपस्यामूलक जीवन शैली अपनाना। अपने जीवन में थोड़ा तपको स्थान देना चाहिए, थोड़ा त्याग को स्थान देना चाहिए। वस्तुतः यह त्याग-तप ही हमारे जीवन की विशुद्धि का आधार बनते हैं। शेष जीवन तो नश्वर है, आज नहीं तो कल जाना ही है। इसीलिए निरन्तर हममें त्याग और तप के प्रति उत्साह होना चाहिए। शरीर अशुचिता का पिण्ड है आज नहीं तो कल इसको विनष्ट होना है। इसकी नश्वरता को समझो। मिट्टी की यह काया है। एकदिन मिट्टी में मिलेगी। इससे पहले मिट्टी की काया मिट्टी में मिले, हम इससे अमृत का रस निचोड़ लें।

बन्धुओ, साधना का मार्ग केवल यही है। जो मरमर काया में भी चिन्मय काया की गवेषणा कर लेता है, जो मिट्टी से भी अमृत निचोड़ने की कला सीख जाता है उसके जीवन की स्थिति बिल्कुल भिन्न हो जाती है। यही तप का चरम उद्देश्य है और यही उसका वास्तविक फल इसलिए त्याग और तपस्या से कभी जी न चुराओ। अपने अन्दर की क्षमताओं को पहचानो। हमारे अन्दर जो उत्तम शक्तियाँ हैं जिन्हें हम अभी दबाकर रखे हैं उन्हें त्याग-तपस्या की आंच देते देते हमारी आत्म शक्तियाँ जागृत होती हैं। आत्म भावनाएं उद्घाटित होने लगती हैं और एक बार आत्म शक्तियाँ उद्घाटित होना प्रारम्भ हो गई तो हमारे जीवन के कल्याण का मार्ग स्वयमेव प्रशस्त हो जाता है। तो पहली बात हुई तपस्या के प्रति रुचि, तपस्या के प्रति श्रद्धा और तपस्या के प्रति लगाव उत्पन्न होने की। और दूसरी बात है तपस्या विवेकपूर्ण करें। आज उपवास करने वालों की कमी नहीं है। एक उपवास, दो उपवास, बेला, तेला, अनई, दशलक्षण, सोलहकारण बहुत से उपवास करते हैं करने वाले। यद्यपि उनका यह उपवास सराहनीय है, प्रशंसनीय है। लोग तो एक वक्त का भोजन नहीं छोड़ पाते और वे ही लोग यदि आठ-आठ, दस-दस दिन का उपवास करते हैं तो उनका यह त्याग बहुत सराहनीय है। पर बन्धुओ, ध्यान रखना केवल भोजन का त्याग करने का नाम तप नहीं है। भोजन के साथ-साथ चित्त के

विकारों का भी त्याग होना चाहिए। वस्तुतः मेरी तपस्या का उद्देश्य आत्मशुद्धि है, पर मैं ऊपर से तपस्या तो करता हूँ और भीतर की विशुद्धि का ख्याल न रखूँ तो वह तपस्या कभी सार्थक नहीं हो सकती। कोई भी धार्मिक क्रिया यदि आत्मशुद्धि की ओर नहीं है तो वह क्रिया हमें मनवांछित परिणाम नहीं दे सकती। वे क्रियाएं अधूरी कहलाएंगी। इसलिए आप उपवास करें, एकासन करें, रसों का त्याग करें, **शक्ति के अनुसार जो भी तप कर सकते हैं, अवश्य करें पर इस बात का ध्यान रखें कि यह त्याग मेरा साध्य नहीं है, साध्य तो मेरे अन्तरंग की विशुद्धि है।**

तप : सीढ़ी दर सीढ़ी

बन्धुओ ! बाहर का तप तो सब कर लेते हैं, भीतर का तप बहुत कम कर पाते हैं। तप दो प्रकार के होते हैं। एक बाहरी और दूसरा भीतरी। शास्त्रों में अनेक प्रकार के तप बताये गये हैं। मुनियों के लिये 12 प्रकार के तप बताये गये हैं। छह प्रकार के बाहरी तप और छह प्रकार के भीतरी तप। बन्धुओ ! इन तपों को आप अपनी शक्ति के अनुसार कीजिये पर मैं आज आपको दूसरे प्रकार के तप की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। वह तप है - शारीरिक तप, मानसिक तप और वाचिक तप। शरीर के स्तर का तप, मन के स्तर का तप और वचन के स्तर का तप जो आपको रोज करना चाहिए। उपवास आदि शरीर के स्तर के तप हैं, हम कष्टों को सहन करने का जो अभ्यास बनाते हैं वे सब शारीरिक तप हैं। आप इन्हें शक्ति के अनुरूप कीजिये पर शक्ति को छुपाइये भी मत। आचार्यों ने दो बातों का उपदेश दिया है। एक शक्ति के अनुरूप त्याग और तप करें और दूसरी बात अपनी शक्ति को कभी भी मत छुपायें। लोग दोनों जगह अति कर लेते हैं। कुछ लोग शक्ति का अतिक्रमण कर लेते हैं और कुछ लोग शक्ति को एकदम छिपा देते हैं। यह गड़बड़ियाँ हैं। शारीरिक तप कीजिये, लेकिन यह ध्यान रखें कि शारीरिक तप हमारी चित्त और आत्मा की विशुद्धि में निमित्त बने और वही तप कीजिये जो आपके शरीर पर प्रतिकूल असर न डाले।

वही व्रताचरण करना चाहिए जिसका शरीर और मन पर प्रतिकूल असर न पड़े। इसके लिये धीरे-धीरे अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास से हर कार्य सिद्ध हो जाता है। जो

लोग उपवास करने से घबराते हैं वे पहले एकासन कर लें, एकासन सध जाये तो केवल पेय पदार्थ को छोड़कर बाकी चीजों का त्याग करें। फिर धीरे-धीरे पेय भी छोड़ें। यदि आपके मन में संकल्प है तो कठिनाई कहीं नहीं आयेगी। आपको पहले उपवास में जो कष्ट होगा, दूसरे में वह नहीं होगा और तीसरे में और कम हो जायेगा। और चौथे में तो उपवास और भोजन का भेद ही खत्म हो जायेगा। यदि आप अभ्यास करना चाहें तो कर सकते हैं। शारीरिक तप अभ्यास के माध्यम से ही किया जा सकता है।

पात्र की शुद्धि बिना पात्रता कैसी ?

कई बार लोग कहते हैं कि महाराज। शरीर का तप करने की क्या जरूरत है तपाना तो मन को है, विकार तो भीतर हैं तो भीतर की शुद्धि की बात करें। बाहर की शुद्धि से क्या प्रयोजन ? ऐसे लोगों से मैं कहना चाहता हूँ कि भैया, तपाना तो दूध को है पर बिना बर्तन के दूध हम नहीं तपा सकते। दूध को तपाने के लिये बर्तन को तपाना बहुत जरूरी है। बगैर बर्तन को तपाये दुध कभी तपा है क्या ? पहले बर्तन तपता है फिर दूध तपता है जो लोग शारीरिक कष्टों से डरकर त्याग और तपस्या के मार्ग से पीछे हटते हैं वे बिना बर्तन के दूध तपाने का असफल प्रयत्न करते हैं। जो न भूतो, न भविष्यति। बर्तन पहले तपेगा, दूध बाद में, हाँ खाली बर्तन वाले भी मूर्ख शिरोमणि हैं। लेकिन भाई मेरे, बर्तन के बिना कभी दूध नहीं तप सकता। शरीर को तपाना मेरा ध्येय नहीं आत्मा की विशुद्धि ध्येय है। लेकिन शरीर की ममता और आसक्ति को दूर करने के लिये, आत्मा को विशुद्ध बनाने के लिये माध्यम तो यही है। शरीर माध्यम है। उस से हम अपने अन्दर के शरीर को विशुद्ध बना सकते हैं। आत्म शुद्धि का ख्याल रखे बिना शरीर को तपाना केवल तन को सुखाना है। तन को सुखाना तो एक प्रकार का लंघन है, वह हमारा ध्येय नहीं। आत्म शुद्धि को ध्यान में रखकर यदि आप तन को सुखाते हैं तो यह आपके भेद-विज्ञान को पुष्ट करता है और जीवन को निर्मल बनाने में समर्थ होता है। इसलिए आजकल आलोचनाएं बहुत हो जाती हैं कि शरीर का तप करने से क्या होता है, यह तो भूखों मरना है, यह लंघन करना है। यह बात सही है कि आत्म शुद्धि का ख्याल रखे बिना शरीर तपाना जीवन को कुंद बनाना है कुंदन नहीं। बड़े-बड़े ऋषियों ने, मुनियों ने छह-छह

माह तक महान्-महान् तप किये जो उपवास किये वह केवल इसलिए नहीं कि केवल तन को तपाना है, उन्होंने तन को तपाया मन को सधाया और आत्मा को कुंदन बनाया। यही मार्ग है इसके बिना दूसरा कोई और मार्ग नहीं है। जो व्यक्ति त्याग और तपस्या से घबराता है वह कभी सम्यक्दृष्टि नहीं हो सकता। सम्यक्दृष्टि का उत्साह हमेशा त्याग और तपस्या में लगा रहता है। वह हमेशा भावना भाता है कि मैं कब त्याग और तप को धारण कर अपने जीवन की परम विशुद्धि को प्राप्त करूं। कुछ लोग जो भरत चक्रवर्ती का उदाहरण देते हैं वे कहते हैं, हम तो भरत चक्रवर्ती के अनुयायी हैं। भरतजी घर में ही वैरागी। जैसे भरतजी को ज्यादा त्याग, तप नहीं करना पड़ा। दीक्षा लेते ही अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान हो गया। वैसा ही हम करेंगे। भगवती आराधना में एक जिज्ञासु को कितना सुन्दर और सटीक समाधान दिया गया है। जिज्ञासु ने तर्क दिया, मैं भरत जी जैसा हूँ, तो रचनाकार ने बड़ा अच्छा उत्तर दिया सुनो किसी अन्धे को दैवयोग से खजाना मिल गया तो यह मत समझना कि हर अन्धे को खजाना मिल जायेगा। इस खजाने के लोभ में अपनी आंखें मत फोड़ लेना। तुम्हें तो कदम-कदम पर सम्हल कर चलने की जरूरत है। पुरुषार्थ करना पड़ता है। बगैर पुरुषार्थ के सिद्धि की उपलब्धि नहीं हो सकती। इस बात को अपने मानस पर स्थायी रूप से अंकित कर लीजिये। और फिर जो लोग भरतजी के वैराग्य का उदाहरण देते हैं वह थोड़ा गहराई से विचार करें कि भरतजी घर में वैरागी तो थे ही वैरागी होने के साथ-साथ वैरागियों के चरणानुरागी भी थे। यदि भरत के आदर्श को आत्मसात करना है तो दूसरों का भी ध्यान रखो। यह तो केवल ऊपर की बहानेबाजी है। जो वैरागी होता है वह बैरागियों का सतत् अनुसरण करता है। उन्हें अपने जीवनका परम आदर्श मानकर चलता है सदैव उनके पदचिन्हों का अनुकरण करता है। भरत चक्रवर्ती सम्यक्दृष्टि थे। देव, शास्त्र, गुरु के प्रति उनके मन में अनन्य श्रद्धा थी।

कब मिलिहैं ते ऋषिराज, आप तरैं पर तारहीं ?

महापुराण में एक प्रसंग आता है कि एकबार भरत चक्रवर्ती अपने महल के आंगन में किसी मुनिराज के पङ्गाहन की प्रतीक्षा में खड़े थे काफी विलम्ब हो गया कोई मुनिराज नहीं आये। वह अपने भाग्य को कोस रहे थे कि आज किसी निर्ग्रन्थ को आहार

दिये बगैर मैं अपने गले से कौर कैसे नीचे उतारूंगा ? यह मेरे जीवन के दुर्भाग्य का दिन है। हममें से किसी के जीवन में ऐसी विशुद्धि है क्या ?

ध्यान रखना, सम्यक्दृष्टि धर्मात्मा व साधुओं के समागम को अपने जीवन की श्रेष्ठतम घड़ियों में गिनता है। क्योंकि साधुगण त्याग और तपकी प्रतिमूर्ति दिखाई पड़ते हैं। रत्नत्रय रूपी धर्म का दर्शन कराते हैं। इसीलिए आचार्य कुन्दकुन्द ने दिगम्बर मुद्रा को दर्शन शब्द से कहा है। वे कहते हैं - यह दिगम्बर मुद्रा दर्शन है। क्यों है- यह दर्शन मोक्षमार्ग को दिखाता है, सम्यक्त्व को दिखाता है, संयम को दिखाता है, धर्म को दिखाता है। इसलिए दर्शन है। सम्यक्त्वी सदैव ऐसी वीतराग मुद्रा के दर्शन के लिये उत्कण्ठित और लालायित रहता है। भरत चक्रवर्ती के साथ भी यही स्थिति रही। वह बहुत दुविधात्मक स्थिति में था। क्या करूँ ? उसके मन में बड़ी आकुलता थी, कि मुझे किसी मुनिराज का सान्निध्य नहीं मिल रहा। मैं कैसा अभागा हूँ ? पर संयोग से अचानक उसके पुण्य ने जोर मारा और दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज उसके आंगन में उतर गये। भरत चक्रवर्ती का रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह चक्रवर्ती निर्ग्रन्थ मुनिराजों की परिक्रमा कर रहा है। वह जान रहा है कि मैं सिर्फ राज चक्रवर्ती हूँ पर मुनिराज धर्म चक्रवर्ती हैं। मेरा चक्रवर्तीत्व तो क्षणिकक्षयी है और रत्नत्रय के माध्यम से जो चक्र मिलता है वह शाश्वत है। उसके जीवन का भी वही आदर्श था। विधिपूर्वक पङ्गाहन कर अपने गृह में पहुँचा। 84 खण्ड का महल था, सीढ़ियों से चढ़कर ले जा रहा है महाराज को। रास्ते में महाराज से कहता है जैसे यह सीढ़ियां टेढ़ी-मेढ़ी हैं, वैसे ही मेरा मन भी टेढ़ा-मेढ़ा है। आज आपकी भक्ति से उसमें कुछ परिवर्तन आ जायेगा ऐसा मेरा विश्वास है। धन्य है वह भरत चक्रवर्ती।

जानें वास्तविक भेद विज्ञान

मैं कहना चाहता हूँ यदि भरत चक्रवर्ती को आदर्श बनाना चाहते हो तो इस प्रकार बनाओ जो तुम्हारे जीवन को आदर्श बनाने में निमित्त बन सके। बहानेबाजी में उलझने वाले को कुछ मिलने वाला नहीं। मैं आपसे कह रहा था, शारीरिक तप अत्यन्त जरूरी है, लेकिन मनःशुद्धि का ख्याल रखकर। तप करिये, शक्ति के अनुरूप करिये। तप

को अपने जीवन का आदर्श बनाईये। शारीरिक कष्टों को आप जितना सहन करेगे आपकी मानसिक शक्ति उतनी ही बढ़ेगी, आपकी सहनशीलता जितनी बढ़ेगी उतनी ही सहिष्णुता भी बढ़ेगी। भेद विज्ञानी कहते हैं, अपनी आत्मा को शुद्ध बनाना है तब शरीर को कष्ट क्यों दें ? अच्छे से ध्यान करो, निर्वाण तो ध्यान से होगा। वाह ! बढ़िया ए.सी. में बैठ जाओ और शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं निरंजनोऽहम्, रटते रहो। बहुत बढ़िया ? बुद्धोऽहं रटते-रटते अगर किसी का कल्याण होता तो तीर्थंकर वन का रास्ता क्यों चुनते ? ध्यान रखना भेद विज्ञान की प्रतीति महलों में नहीं जंगलों में होती है। शरीर बुद्धि के रहते भेद विज्ञान हो ही नहीं सकता। शरीर और आत्मा की बुद्धि का जब मेल होता है तभी सच्चा भेद-विज्ञान होता है और ऐसा भेद-विज्ञानी अपनी आत्मानुभूति के बल पर कैवल्य को प्राप्त होता है। उनलप के गद्दे पर बैठकर भिन्न है, भिन्न है की रट लगाने वाले एक मच्छर के काटने पर ही खेद खिन्न हो जाते हैं। कहां चला गया भेद-विज्ञान ? अभी तो कह रहे थे कि भिन्न है भिन्न है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं -

अदुःखभाविदं गाणं दुहे सदि विणस्सदि ।

तम्हा जम्हा बलं जोई, भावह दुक्खस्स भावणा ॥ अष्टपाहुड

बिना दुःख के जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह दुःख आने पर कर्पूर की तरह उड़ जाता है। इसलिए जबतक तुममें शक्ति है दुःख का भावो, दुःख को सहो। दुःख सहिष्णु बनो। जितना तुम कष्ट सहिष्णु बनोगे उतना तुम्हारा जीवन परिपक्व और प्रौढ़ होगा। तुम्हारा भेद-विज्ञान पृष्ठ होगा और तुम्हारे जीवन के कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा। इसलिए इससे कभी घबराओ मत। जो इनसे घबराते हैं वह कभी पार नहीं हो पाते। त्याग और तपस्या को हमेशा अपने जीवनका आदर्श बनाकर चलना चाहिए। त्याग, तपस्या से दूर भागना भी अज्ञान है और त्याग तपस्या का अतिरेक करना भी अज्ञान है। दोनों में संतुलन बनाकर चलना चाहिए। कुछ लोग हैं जो तपस्या करना नहीं चाहते, वह चाहते हैं सीधे ही काम हो जाये।

अनबूड़े बूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग

एक युवक था वह नदी के किनारे गया, तैरना चाहता था। उसका साथी धड़ल्ले से पानी में उतर गया। उसने पुकारा आओ, तुम भी तैरो। उसनेजैसे ही पांव रखा, पांव फिसल गया। अपने आपको सम्हालते हुये वह नदी के किनारे आया और पैर पटकता हुआ बोला - कसम भगवान की अब जब तक मैं तैरना नहीं सीख जाता तब तक पानी में पाँव नहीं रखूंगा। तो जो पानी में था वह पूछता है क्यों भाई, क्या तुम बिस्तर में तैरना सीखोगे?, तैरना सीखने के लिये पानी में उतरना जरूरी है। आजतक ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं हुआ जो बिना पानी में उतरे तैरना सीख गया हो। बन्धुओ, मैं आपसे कहना चाहता हूँ यदि तैरना चाहते हो तो पानी में उतरिये। यदि घबराहट होती है तो कोई बात नहीं। पूरी तरह छलांग नहीं लगा सकते हो तो जो कुछ रखे हुये हैं उसके सहारे तैरिये, लेकिन तैरने का आनन्द जरूर लीजिये। अपने आपको पीछे मत कीजिये। बड़े-बड़े त्याग और तप के आदर्श आप अपना सको बहुत अच्छी बात है। नहीं कर सकते तो छोटे-छोटे नियम, संकल्प, संयम के सहारे तो आगे बढ़िये। तैरिये, तैरने का आनन्द लीजिये। इसका लाभ उठाईये। आज नहीं तो कल इतनी सामर्थ्य तुम्हारे अन्दर आ सकती है कि तुम अपने बाहुबल से तैरने का सौभाग्य अर्जित कर सकते हो और अपना कल्याण कर सकते हो। बन्धुओ तपस्या का सम्बन्ध हमारी दृष्टि से है। यदि आपकी दृष्टि एक बार मुड़ जाये तो बड़े से बड़ा तप भी आपके लिये सरल हो सकता है और जब तक आपकी दृष्टि शरीर पर आसक्त है छोटा सा नियम सुनते ही आपके हाथ-पांव सूज जाते हैं।

बाँध जाता जिस क्षण दृढ़ निश्चय, नहीं डिगा पाती विपदाएँ

दृष्टि का खेल है। आज हम जैसे साधुओं की बात करो। क्या हम अलग से जन्मे हैं एक ही तो प्रोडक्ट है। चाहे आपका हो, चाहे हमारा हो। अलग हाड़-मांस से हमारा शरीर नहीं बना। लेकिन जब तक व्यक्ति अज्ञान से ग्रसित होता है, उसकी शरीर के प्रति ममता होती है। शरीर के साथ होने वाली छोटी सी घटना भी उसे हिला कर रख देती है और जब भेद-विज्ञान हो जाता है, तब बड़ी से बड़ी घटना में भी वह अविचलित बना रहता है। यह अविचलन की स्थिति हमारे अन्दर आ सकती है। उसकी तरफ हमारी

दृष्टि जानी चाहिए। आप सुकुमाल मुनि का उदाहरण याद कीजिये। सुकुमाल कितने सुकुमार थे, पता है आपको ? इतने सुकुमार थे कि उन्होंने कभी सूरज की रोशनी नहीं देखी, रत्नों के प्रकाश में ही रहे। जिन्हें रोज कमल की पंखड़ियों में खिला हुआ चावल खिलाया जाता था। हमारे आचार्य महाराज (परम पूज्य आचार्य विद्यासागर जी) ने उनकी सुकुमारता को बताते हुये कहा था कि भ्रमण के लिये जाते हुए उनके हाथी के पाँव के नीचे यदि खीरा आ जाये तो उन्हें सर्दी हो जाय ऐसी सुकुमारता थी। रत्नों का कम्बल चुभा करता था उन्हें। सरसों के दाने जिन्हें कष्ट उत्पन्न करें उन्हीं सुकुमार को जीवन के अन्तिम तीन दिनों में स्यालिनी अपने तीन बच्चों के साथ चुट-चुट कर खाती रही। नख से लेकर कमर तक क्षत-विक्षत कर डाला तो भी उफ नहीं किया। कहां से आ गई शक्ति, कहां से आ गई क्षमता ? शरीर भी वही था। संहनन भी वही था। संस्थान भी वही था। वही सुकुमाल जिन्हे सरसों का दाना चुभ रहा था, उन्हें आज स्यालिनी का दंश नहीं चुभ रहा है। कहां से आई शक्ति ? जब तक सुकुमाल मुनि के मनमें शरीर के प्रति मोह था तब तक सुकुमाल सुकुमार बने रहे। अभी तक उन्हें शरीर से जुड़ी हुई छोटी-छोटी घटनाएँ भी प्रभावित करती थीं और जैसे ही उनकी दृष्टि आत्मा पर केन्द्रित हुई तो स्यालिनी के दांत भी उन्हें प्रभावित नहीं कर सके। यह सारा खेल दृष्टि का है। जिस दिन तुमने अपनी दृष्टि को मोड़ लिया उस दिन जो तुम्हें कष्टदायक लग रहा था वही आरामदायक लगेगा।

एक बार पत्रकार वार्ता हो रही थी। जब दिगम्बर मुनिकी चर्चा उन्हें बताई गई कि दिन के 24 घंटे में हम एक बार भोजन करते हैं, पदयात्रा करते हैं, केशलेंच करते हैं गर्मी, सर्दी, वर्षा में निरावरण रहते हैं, कुछ भी ग्रहण नहीं करते। गर्मी में पंखा वगैरह का, सर्दी में कम्बल वगैरह का प्रयोग नहीं करते तो एक पत्रकार ने कहा - आपको कष्ट नहीं होता ? मैंने कहा- आपको देखने में कष्ट हो सकता है। आपके लिये कष्ट है, मेरे लिये सहज है।

हैं असीम क्षमताएँ अन्दर, बस एक बार विश्वास करो

जब तक व्यक्ति अपनी दृष्टि व्यवस्थित नहीं कर लेता तब तक कष्ट की कल्पना से भी सिंहरन उत्पन्न हो सकती है। लेकिन जब एक बार दृष्टि बदल जाती है तो

उसके लिये सब कुछ एकदम सहज हो जाता है। सारा खेल दृष्टि का है। आप देखिये, शिखरजी के पहाड़ चढ़ने की जब बात आती है तो ईमानदारी से आप बताना पहाड़ आप कैसे चढ़ते हो ? पांव से चढ़ते हो ? नहीं, पांव से नहीं भावों से चढ़ते हो। आप दूसरे हिल स्टेशन में जाओ। वहां आपसे कहा जाये कि 9 कि.मी. की चढ़ाई है तो आप चढ़ोगे ? तीन काल में नहीं चढ़ोगे। लेकिन यहाँ जब सम्मेशिखर जाते हैं तब कहते हैं नहीं, मुझे चढ़ना है। 9 कि.मी. चढ़ना, 9 कि.मी. वन्दना और 9 कि.मी. उतरना और वह भी सहर्ष। कहां से आ गई ताकत ? चार कदम चलने की सामर्थ्य न रखने वाला भी पूरे पहाड़ की वन्दना करके आ जाता है। कहां से आती है यह ताकत ? यह ताकत है तुम्हारे भावों की, तुम्हारी श्रद्धा की, तुम्हारी दृष्टि की। बस इससे समझो, तुम्हारी आत्मा में अनन्त क्षमता है, उसे उद्घाटित करो, वह ढँकी पड़ी हुई है। उस ओर दृष्टि को मोड़ लो। दृष्टि मुड़ते ही तुम्हारे भीतर भी कोई तपस्वी प्रकट हो जावेगा। दृष्टि मोड़िये, क्षमतायें अपार हैं, उसे उद्घाटित करने का प्रयत्न करें। मन में दृढ़ता होनी चाहिए, इच्छा शक्ति होनी चाहिए। यदि मन में दृढ़ता आ जाये, इच्छाशक्ति आ जाये तो दुनिया में कोई ताकत तुम्हारी बाधक नहीं बन सकती और बड़ी से बड़ी प्रतिकूलता भी तुम्हें दुर्बल नहीं बना सकती। वस्तुतः सबसे ज्यादा दुर्बलता हमारी मानसिक दुर्बलता है। इसलिए कोई भी तप हो शारीरिक हो या मानसिक। इच्छाशक्ति का होना जरूरी है। अपनी इच्छाशक्ति को जगाइये। अपनी आत्मा की क्षमता को पहचानिये और उसका उपयोग करने की कोशिश कीजिये। आपमें क्षमतायें बहुत हैं। अगर आपसे कोई कहे कैसे करेंगे ? अरे करेंगे कैसे ? चाहोगे तो अपने आप होगा। उस तरफ की दृष्टि होनी चाहिए। जिस कार्य में आपको साक्षात् लाभ दिखता है तो आप थोड़ी सी कठिनाई को भी सहज में ले लेते हैं। लेते हैं कि नहीं लेते ? बस, भौतिक लाभ पर तो तुम्हारी दृष्टि होती है पर पारमार्थिक लाभ पर तुम्हारी दृष्टि नहीं रह पाती। जिस क्षण पारमार्थिक लाभ पर तुम्हारी दृष्टि होगी तो सारा काम अपने आप हो जायेगा।

एक बार एक सज्जन ने मुझसे कहा महाराज, आप बड़े तपस्वी हो। कैसे सहन करते हो ? आप लोग भूख-प्यास की बाधा कैसे सहन कर लेते हो ? हमसे तो एक मिनट

भी सहा नहीं जाता। मैंने उससे कहा आप क्या करते हो? दुकान में बैठता हूँ। अच्छा यह बताइये आप सुबह से दुकान में बैठे हो और खाना नहीं खाया है और आप सोच रहे हो कि कोई आये तो मैं घर जाऊँ और खाना खाऊँ। दिनके ढाई बज गये हैं और अभी तक कुछ खाया नहीं है। सबेरे से दुकान में बैठे और आपने तय कर लिया है कि बस अब 5 मिनट और प्रतीक्षा करते हैं, कोई आता है तो ठीक नहीं तो शटर गिरायेंगे और सीधे घर जायेंगे। आपने फैसला कर लिया। पर 5 मिनट बीते नहीं इससे पहले ही चार ग्राहक आगये और उनको डील करने में ही आपके पूरे चार घंटे बीत गये। अब कहाँ गई आपकी भूख? महाराज, फायदे को देखने से भूख चली जाती है। तो जैसे बाहर के फायदे को देखने से भूख चली जाती है वैसे ही भीतर के फायदे को देखने से कष्ट भाग जाते हैं। मजबूरी में प्रतिकूलताओं को सहन करते हुये यदि उसे मन से मंजूर कर लें तो प्रतिकूलता रहेगी ही नहीं। वस्तुतः प्रतिकूलताओं का सम्बन्ध मनसे है, बाहर की परिस्थितियों से नहीं। यदि तप करना चाहते हो तो अपनी दृष्टि को बदलो, शारीरिक स्तर पर तप करने का अभ्यास बनाओ। असम्भव नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को आठ/पन्द्रह दिन में एकाध उपवास करना चाहिए। **आचार्य वीरसेन महाराज** ने श्रावकों के धर्म की चर्चा करते हुये कहा-

दाणं पूया सीलमुववासो सावयधम्मो चउव्विहो। - धवला

दान, पूजा, शील और उपवास श्रावकों के चार प्रमुख धर्म हैं। इनके माध्यम से कर्म की निर्जरा हो सकती है। आत्मा की विशुद्धि होती है। भेद-विज्ञान पुष्ट होता है और आगे चलकर तुम समाधि की साधना में सक्षम हो सकते हो। इसलिये इसका अभ्यास करना जरूरी है। पूरी तरह नहीं कर सको तो अष्टमी एवम् चतुर्दशी को एकासन का अभ्यास बनाओ। तुम यदि चाहते हो कि अस्पताल में नहीं मरना पड़े तो अपनी जीवनचर्या में बदलाव लाओ। बार-बार खाने का अभ्यास छोड़ो। दिनभर सुबह से शाम तक बार-बार खाने की प्रवृत्ति छोड़ो। कुछ संयम लाओ। दो बार ही भोजन करेंगे, इससे ज्यादा नहीं करेंगे एक लिमिट तो रखो और कम से कम रात्रि में चारों प्रकार के आहार-पानी का त्याग कर लो। यदि ऐसा करते हो तो खाते-पीते हुये भी महिने में 15 दिन का,

साल में 6 महिने का उपवास का फल मिलता है। करना चाहो तो कर सकते हो। मनुष्य पर्याय में नहीं करोगे तो कब करोगे? अब क्या करूँ? 75-80 की उमर हो गई तो भी रात्रि का भोजन नहीं छूटता। भगवान बचाये उन्हें। जिन्दगी छोड़ देंगे पर खाना नहीं छोड़ सकते। विचार करें संयम धारण करने का ध्येय बनाना चाहिए। अशक्तता है तो शरीर को ढालिये शरीर की प्रकृति के अनुरूप। औषधि के अलावा अन्य चीजों को तो छोड़िये। संयमित दिनचर्या को नियमित बनाना चाहिए। यह भी एक प्रकार के तप का अभ्यास है और जो स्वस्थ हैं उन्हें तो प्रमाद नहीं करना चाहिए। वैसे ठीक ढंग से तप करोगे तो हमेशा स्वस्थ रहोगे। कभी दवाई खाने की नौबत नहीं आयेगी। कुछ वर्ष पहले अमेरिका में एक शोध हुआ। उपवास के माध्यम से कैंसर जैसे रोग का इलाज किया जा सकता है। अमेरिका जैसे देशों में उपवास चिकित्सा को बहुत प्रोत्साहित किया जा रहा है। आठ दिन या पन्द्रह दिनों में उपवास करने वाले व्यक्ति को कई प्रकार के रोगों से बचाया जा सकता है इससे शरीर की मशीन को आराम मिल जाता है। हाँ। उपवास करना, उपवास करके अपने पास बैठना। मन्दिर में रहिये, स्वाध्याय में रहिये, धर्मचर्चा में रहिये, वह दिन केवल अपनी आत्मा के लिये समर्पित कर दीजिये। पूरी तरह उपवास नहीं कर सकते तो एकासन का अभ्यास बनाइये। कम खाने का अभ्यास बनाइये। वह भी नहीं कर सकते तो आठ दिन में एक दिन केवल दो टाइम भोजन करें और कुछ न करें। आप दशलक्षण में एकासन कर लेते हैं, उपवास भी कर लेते हैं। कैसे कर लेते हैं? जब दस दिन आप चला सकते हैं तो महिने में आप चार दिन भी चला सकते हैं और अभ्यास बनाओ तो सारी जिन्दगी भी चलाया जा सकता है। केवल तुम्हें अपने आपको मानसिक रूप से तैयार करने भर की देर है। जब तक वह तैयारी नहीं होती तब तक सब कुछ कठिन दिखता है और जैसे ही तैयारी हो जाती है सब चीजें अपने आप होने लगती हैं।

जीवन के रूपान्तरण की वैज्ञानिक प्रक्रिया

हमारा यह ध्येय होना चाहिए। इनके साथ-साथ और जो सावधानी जरूरी है वह है परिणामों की शुद्धि। कई बार लोगों के व्रत और उपवास के कारण भी लोग उनका मखौल उड़ाना शुरू कर देते हैं। जिसदिन उनका उपवास होता है उसीदिन वह ज्यादा

गरम हो जाते हैं। यह बात ठीक नहीं। जो अपनी कषायों को नहीं छोड़ते, उनकी आकुलताएं बढ़ जाती हैं। उसको नियंत्रित करिये। यह हमारा ध्येय है। यह शारीरिक तप है। वाचिक तप यानी वाणी में संयम रखिये, कठोरता न लायें। प्रिय, मधुर, हितकारी वचनों को बोले। ऐसी बात किसी से ना बोलें जिसका कोई प्रतिकूल असर पड़ता हो। यह वाचिक तप वचनात्मक तप है। यह तो हम कर सकते हैं। इसमें क्या लगता है? यह भी एक तपस्या है। इसके माध्यम से भी आप अपना हित कर सकते हो और बहुत सा अहित बचा सकते हो। वाणी के संयम के बारे में मैं आपसे पर्याप्त कह चुका हूँ। मानस तप का मतलब क्या है? मानस तप का मतलब है अनुकूलता और प्रतिकूलता में समता का अभ्यास। यह बहुत जरूरी है। यह अभ्यास जितना आप बढ़ायेंगे आपका जीवन उतना आनन्दित होगा। सदैव प्रसन्न बने रहेंगे। यदि आपने वस्तु की वास्तविकता को जान लिया और मान लिया कि संसार में घटित होने वाली घटनाओं में मैं सिर्फ एक छोटा सा निमित्त मात्र हूँ। जो होना है सो होता है और जो होगा सो होने दो। उसको सहज भाव से स्वीकारें। अच्छा हो तो और बुरा हो तो। उसे प्रकृति का आदेश मानकर स्वीकारें। अनुकूलता में ज्यादा प्रसन्न न हों और प्रतिकूलता में खिन्न न हों। संयोग में हर्षित न हों और वियोग में विषादग्रस्त न हों। यह भी एक तपस्या है। इस तपस्या का साक्षात् प्रसाद आपको मिलेगा, वही आपके मन की प्रसन्नता है। मनकी शान्ति है। आपका चित्त कभी तनावग्रस्त नहीं होगा। आपका मन कभी अवसाद ग्रस्त नहीं होगा। आपकी आत्मा में कभी अशान्ति नहीं होगी। तनाव, पीड़ा, अवसाद और अशान्ति से अपने आपको बचाना ही सच्ची तपस्या है। यह तपस्या भी तो आप कर सकते हैं। इसके लिये अभ्यास बनाइये। यदि ऐसा जीवन हम बना लेते हैं तो तय मानिये हम एक बहुत बड़ी तपस्या करने में समर्थ हो जाते हैं। स्वाध्याय के माध्यम से हमें यह सब बातें सीखने में आती हैं और यदि हम यह सब सीख-सीख कर जीवन में उतारना प्रारम्भ कर देते हैं तो वहीं से हमारे जीवन के रूपान्तरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। गृहस्थों के जीवन में तप की यही उपादेयता है। यही महिमा है केवल दृष्टि को बदल दीजिये। सब चीजें आपके जीवन में घटित होने लगेंगी। जो चीजें आपको कठिन दिखाई पड़ती हैं कल आपको वे सरल भी लगने लगेंगी। वस्तुतः कठिनता और सरलता हमारे मन से जुड़ी होती है। मन को हमने

यदि व्यवस्थित कर लिया तो सब कुछ हो गया। नहीं तो हम कुछ भी नहीं कर सकते। अपने कार्यों के प्रति दक्षता, अपने मन में समर्पण यह हमारे जीवन की एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। ऐसा तप तो हम आप कर ही सकते हैं।

तुलसी संगत साधु की, हरै कोटि संताप

तप अवश्य करें। तप को अपने जीवन का साध्य बनायें। तपस्या की महिमा को जानें और तपस्वियों के प्रति अपनी निष्ठा, भक्ति को बलवती बनायें। ध्यान रखें, त्यागी तपस्वी के सम्पर्क में आने से त्याग और तपस्या के क्षेत्र में उल्लास बढ़ता है और भोगी विलासी के बीच रहने से भोग और विलासता का भाव आता है। संयमी के सम्पर्क में रहोगे तो संयम के प्रति अनुराग बढ़ेगा। हम जैसे वातावरण में रहते हैं, हमारा मन वैसा बन जाता है। आप अपने जीवन को तप, त्यागमय बनाना चाहते हैं तो वहां उनके सम्पर्क में रहो, जहां तप, त्याग की प्रेरणा मिलती है। जिनके सम्पर्क में आने के बाद उस मार्ग पर चलने का भाव जागृत होता है ऐसी भावना यदि हमारे अन्तःस्थल में जागृत हो जाये तो जीवन में किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं आ सकती। कोई दुविधा नहीं आ सकती। यह तपस्या जीवन की दुविधाओं को दूर करने की एक कीमिया है, औषधि है, जिसके बल पर हम अपने जीवन का उद्धार कर सकते हैं। हम सब का जीवन सुखमय हो, शान्तिमय हो, तप के स्वरूप को समझकर तपस्या को हम अपने जीवन में स्थान दें, उसकी आराधना करें इसी भावना के साथ मैं अपनी वाणी को विराम दे रहा हूँ।



दान

यह जन्म हुआ जिस अर्थ अहो

गृहस्थों के षट् कर्तव्यों के आखिरी चरण की चर्चा आज की जानी है। वह है दान। मैं अपनी बात एक रूपक से प्रारम्भ करने जा रहा हूँ। एक बार धरती ने पेड़ से कहा कि देखो, मैं तुम्हें अपना रस प्रदान करती हूँ और उससे तुममें फूल लगते हैं, फल लगते हैं, पत्तियाँ आती हैं, कोपलें फूटती हैं। तुम एक काम किया करो। इसे अपने पास बचाकर रखा करो। किसी को दिया मत करो। पेड़ ने धरती के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुये कहा माँ, सचमें आपका मुझ पर बड़ा उपकार है लेकिन मैं क्या करूँ, मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकता क्योंकि मेरा तो जन्म ही परोपकार के लिये हुआ है। इसलिये मैं अपने फूल दूंगा, फल दूंगा, छाया दूंगा, सब कुछ दूंगा। पेड़ की इस उदारता को सुनकर धरती रूठ गई और उसने अपना रस देना बन्द कर दिया। फिर क्या था ? धीरे-धीरे पेड़ के पत्ते पीले पड़ने लगे। उसके फूल-फल झड़ गये। पत्ते झड़ गये। धरती ने पेड़ को समझाते हुये कहा देखो, अब भी चेत जाओ। तुम्हारे फल चले गये, फूल चले गये। पेड़ ने मुस्क्रुते हुये कहा माँ, मुझे देते हुये आज भी आनन्द आ रहा है। धीरे-धीरे पेड़ सूखकर एक टूट में परिवर्तित हो गया। धरती ने कहा अब भी चेत जाओ। पेड़ ने कहा माँ ! मैं तो अब अपनी इन सूखी लकड़ियों को देकर प्रसन्न रहना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ मेरी यह सूखी लकड़ियाँ लोगों के शीत को दूर करने में सहायक हों, लोगों की इमारत में काम आयें तो मैं अपने आपको कृतार्थ महसूस करूँगा और अपने जीवन को सफल मानूँगा। तुम मुझे देने से कितना भी इनकार करो, मैं देने से पीछे नहीं हटूँगा। मैं अपनी जिन्दगी की अन्तिम श्वास भी देते हुये बिताना चाहता हूँ, ग्रहण करते हुये नहीं। पेड़ के इस भाव से धरती द्रवीभूत हो उठी। उसने फिर से रस देना प्रारम्भ कर दिया फलतः पेड़ फिर से हरा-भरा हो गया।

एक बार हिमालय ने गंगा से कहा- मैं तुम्हें अपना जल देता हूँ, तुम इसे अपने पास रखा करो। फालतू बहाया मत करो। गंगा ने कहा यह मेरे जीवन में नहीं हो सकता।

मेरा जन्म ही परोपकार के लिये हुआ है। प्यासे कंठ को तर करना और सूखी धरती को हरी-भरी बनाना इसीमें मेरे जीवन की परिपूर्णता और कृतार्थता है। मैं इसे कभी रोक नहीं सकती। हिमालय ने कहा यदि ऐसा करोगी तो मैं तुम्हें अपना जल नहीं दूँगा। गंगा ने कहा तुम मत दो, मैं बह चली तो बह चली, रुकूँगी नहीं। मेरा जन्म जिसके लिये हुआ है मैं वहीं जाऊँगी, भले ही मेरी धार पतली क्यों न हो जाय। गंगा के इस त्याग भाव से हिमालय का हृदय पसीज गया। वह पिघलना शुरू हो गया। नतीजा यह निकला कि गंगोत्री से निकलने वाली छोटी सी गंगा गंगासागर पहुँच कर विशाल सागर बन गई। बन्धुओ ! यह तो एक छोटा सा रूपक है। लेकिन इसका सन्देश बहुत गहरा है। आज सार में बस इतना कहना चाहता हूँ कि जो निरन्तर देता है वह निरन्तर पाता है। देने वाला पाता है। प्रकृति का यह नियम है कि जो खोता है वह पाता है। ग्रहण को छोड़ें। केवल ग्रहण करेंगे तो कुछ हासिल नहीं होगा और यदि ग्रहण के साथ छोड़ेंगे तो हमारे जीवन का क्रम बनेगा। आप थोड़ा विचार करें। भोजन करो और यदि मल विसर्जन न करो तो क्या होगा ? तकलीफ होगी कि नहीं होगी। श्वास भीतर लें और बाहर न करें तो आपकी क्या हालत होगी ? जीना दूभर हो जायेगा। संत कहते हैं श्वास को लेना जितना जरूरी है श्वास को छोड़ना भी उतना ही जरूरी है। भोजन करना जितना आवश्यक है मल का विसर्जन भी उतना ही आवश्यक है। पैसा कमाना जितना जरूरी है उसको सत्कार में लगाना भी उतना ही जरूरी है। बस, यही गृहस्थ का धर्म है। तभी तुम्हारे जीवन में संतुलन बना रहेगा।

सोचो, साथ क्या जायेगा ?

गृहस्थ के जीवन का मर्म ही यही है जहां त्याग और भोग के मध्य संतुलन हो। जो केवल धन का संचय करके रखता है उसका जीवन बरबाद हो जाता है। अगर वह अपने संग्रहित धन का सदुपयोग करता है तो तर जाता है। गृहस्थ की शोभा दान से है। ध्यान रखो, तुम चाहे जितना भी धन कमाओ, तुम्हारे द्वारा संचित धन तुम्हारे साथ जाने वाला नहीं है। तुम्हारे जीते जी तुम्हारे साथ बना रहे इसकी भी कोई गारंटी नहीं और मरने के बाद तो आज तक किसी के साथ गया ही नहीं, यह तय है। धन की चंचलता को और

धन की नश्वरता को जो पहचानता है वही उसके सदुपयोग का भाव मन में जागृत कर सकता है। जो अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करते हैं वह मरकर भी अमर हो जाते हैं। ध्यान रखना, पैसा उनका नहीं है जिनके पास वह है, पैसा उनका है जो उसका सदुपयोग कर रहा है। तुमने क्या कमाया यह महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि तुमने किसमें लगाया? खाया खोया वाली बात हो गई। धन/पैसा व्यक्ति कमाता है और एकदिन यहीं छोड़कर चला जाता है। उस व्यक्ति के बारे में विचार करो - जिसने 25 वर्ष की उम्र में अपना व्यापार प्रारम्भ किया। 5 लाख से व्यापार प्रारम्भ किया और 75 वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते 50 लाख तक पहुंच गया। 5 का 50 कर लिया लेकिन अपने लिये क्या किया? जब वह 75 का होकर जायेगा तो खाली हाथ ही जायेगा उसने अपने लिये नहीं जोड़ा सब बाहर के लिये जोड़ा। यह साथ जाने वाला नहीं है। यह जोड़ना किस काम का? जो धन तुम जोड़ते हो वह केवल इस लोक के लिये है लेकिन धन का यदि सदुपयोग करते हो तो वह यहां और वहां दोनों जगह तुम्हारे लिये कल्याणकारी होगा। संत कहते हैं केवल जड़ को मत जोड़ो, चेतन भावों को संतुष्ट करने का भी प्रयत्न करो। केवल धनकी आसक्ति तुम्हारे जीवन में बनी रहेगी तो सिवाय बरबादी के तुम्हें कुछ भी हाथ नहीं लगने वाला और यदि दानशीलता बढ़ती है, धन की आसक्ति घटती है, तो तुम्हारे मन में अनाप-सनाप तरीके से धन कमाने के भाव भी कम होंगे और साथ ही सत्कार में बिताने का प्रयत्न भी करोगे। उसकी तरफ तुम्हारी दृष्टि होनी चाहिये। इसलिये गृहस्थों के लिये कहा गया कि धनका एक निश्चित भाग दान में लगाओ। आप जितना कमाते हैं उतना मत खाईये। कुछ न कुछ दान में लगाईये। नीतिकार कहते हैं **जितनी रकम तुम व्याज में लगाकर दूनी करोगे, व्यापार में वही चौगुनी होगी। खेत में लगाओगे तो सौगुनी होगी। पर अगर दान में दोगे तो अनंतगुनी होगी।** इस तथ्य को समझो और अच्छे काम में अपनी अर्जित सम्पत्ति का एक भाग लगाओ। क्यों लगाये? यह तय मानिये कि पाप के बिना पैसे का अर्जन नहीं होता। पैसा कमाने के लिये पाप करना पड़ता है दूर मत जाओ जैनधर्म की सूक्ष्मता तो यह बताती है कि पैसा खुद पाप है। पांच पापों से तात्पर्य पाप का संग्रह है। धर्मात्मा पाप के संग्रह से लज्जित होता है। मान नहीं करता। लेकिन अज्ञानी जीव जितना पैसा कमाता है उसका सीना उतना फूलता है जैसे बहुत

बड़ी उपलब्धि अर्जित कर ली। ध्यान रखना, **पैसे को कमाने में आत्मा की शान नहीं, पैसे को छोड़ने में आत्मा की शान है।** पैसे को त्यागने में आत्मा की शान है। यह तथ्य जो समझता है वह पैसा कमाता जरूर है पर पैसे के पीछे पागल नहीं होता। वह जितनी दिलेरी से कमाता है उतने दिलेरी से लगाता भी है। मैं आपसे कह रहा था कि पैसे के अर्जन में पाप होता है तो पाप के प्रक्षालन के लिये भी तो कुछ उपाय होना चाहिए।

जा वसुधा काहू की न भई

तुम किसके मोह में पैसा कमाते हो? अपने परिवार के मोह में? अपने कुटुम्ब के मोह में? इसलिये कि मैं पैसा कमाऊंगा तो मेरे घर में किसी चीज की कमी नहीं होगी? मेरे बाल-बच्चे सुख से जीयेगे? वे तुम्हारे द्वारा कमाये गये पैसे में तो हिस्सेदार हो जायेंगे लेकिन तुम्हारे द्वारा जोड़े गये पाप में भागीदार नहीं बनेंगे। इसका भी ख्याल रखना। तो फिर अनाप-सनाप पाप क्यों? और कर भी रहे हो तो उनके प्रक्षालन का उपाय भी करो। ध्यान रखना, सम्पदा शाश्वत नहीं होती, चक्रवर्ती जैसे प्रभावशाली व्यक्ति के पास भी उसकी धन सम्पदा नहीं टिकी। चक्रवर्ती चाहे और अपनी सम्पत्ति को अपने बेटे के नाम वसीयत कर दे तो भी यह टिकने वाली नहीं। आपने कभी सुना कि, चक्रवर्ती का बेटा चक्रवर्ती होता है? **'न भूतो न भविष्यति'**। चक्रवर्ती लाख चाहे, कि अपनी नौ निधियां, चौदह रत्न सब बेटे के नाम कर दूं पर चक्रवर्ती का पुण्य चक्रवर्ती के साथ चला जाता है। उसके बेटे का पुण्य ही उसके काम आता है। यह बात ध्यान रखना। तुम्हारा पुण्य तुम्हारे साथ जायेगा, तुम्हारे बेटे का पुण्य ही उसके काम आयेगा। तुम अपने पुत्र और सम्पत्ति के पीछे चाहे जितना भी जोड़ लो, कोई जरूरी नहीं है कि वह इसका उपभोग कर सके। उनका पुण्य होगा तभी वह उनका उपभोग कर सकेंगे पुण्य क्षीण होगा तो तुम अम्बार भी लगा दोगे तो सब मिटा देगा और यदि प्रबल पुण्य होगा तो यदि तुम कुछ भी न छोड़ो तो भी वह सब कुछ पा जायेगा। दुनिया में ऐसे बहुत से लोग हैं जिनको माँ-बाप से विरासत में कुछ भी न मिला और आज दुनिया में शहंशाह बने बैठे हैं। धीरूभाई अम्बानी इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं जिसने 500 रूपये महिने से अपना कैरियर प्रारम्भ किया और मरते दम 85 हजार करोड़ की जागीर छोड़ गये। इसलिये कहावत है -

**पूत सपूत तो का धन सन्चै ।
पूत कपूत तो का धन सन्चै ॥**

निःस्वार्थ दान आत्मा का स्नान

इसके मर्म को समझें । इसके रहस्य को समझने की कोशिश कीजिये । जो है, जितना है, जबतक है उसके सदुपयोग का संकल्प लीजिये तभी इसकी सार्थकता है । यह मत सोचना कि मैं दे दूंगा तो घट जायेगा। बाहर के देने से कुछ नहीं घटता । बाहर की जो बैलेन्स शीट है वह भीतर की बैलेन्स शीट पर डिपेन्ड करती है। जोड़-घटाव करते रहो पर भीतर से पुण्य की प्रकृति खिसकेगी तो सारा सीधा उल्टा हो जायेगा और अगर ठीक ढंग से खिसकी तो उल्टा भी सीधा हो जायेगा । करोड़पति को रोडपति बनने में और रोडपति को करोड़पति बनने में देर नहीं लगती । रोज आप लोग देखते हैं और सुनते हैं, पर इसे अपने से भिन्न मानते हैं । खुद को इसमें शामिल नहीं करते । यदि हमारा दृष्टिकोण बदल जाये तो हमें लाभ मिल जाये । इसलिये संत कहते हैं अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करना सीखो और दान इसके लिये सबसे अच्छा उपाय है । जो हम अपने व्यापारादि में पाप अर्जित करते हैं उसे प्रक्षालित करने के लिये दान एक श्रेष्ठ माध्यम है । तुम्हारे तन में मैल लगता है, सवैरे से स्नान करके तुम उसे साफ कर लेते हो, साबुन लगाते हो और बिलकुल फ्रेश होकर आ जाते हो । तन के मैल को साफ करने के लिये तुम्हारे पास साबुन है, तुम उसका लाभ लेते हो पर आत्मा के मैल के प्रक्षालन के लिये तुम्हारे पास कौन सा साबुन है, कौन सा स्नान है ? ध्यान रखना, **दान आत्मा का स्नान है जिससे आत्मा के मैल और मलिनता को दूर किया जा सकता है । उसके बल पर अपनी आत्मा का प्रक्षालन किया जा सकता है।** इसलिए आत्म प्रक्षालन के लिये भाव सहित दान करना । कृतार्थ भाव से दान करना । किसी पर एहसान थोपने के भाव से दान मत करना ।

वही दान महान्, जब दूसरा हॉथ रहे अनजान

अब देखो घर में आप नहाते हो । खुलेआम छत पर नहाते हो क्या ? घर के दरवाजे पर नहाते हो क्या ? तुम्हारे घर का स्नान घर कहां होता है ? एक कोने में छिपा हुआ । स्नान करते समय अपने आपको प्रकाशित नहीं करते । छिपा के नहाते हैं । ऐसे ही

दान भी एकदम कृतज्ञ और लघुता के भाव से, उदार भाव से देना चाहिए जिससे किसी को पता भी न लगे और अपना काम भी हो जाये । क्योंकि यह तो स्नान है और स्नान दूसरे को क्या दिखाना ? अपना मैल छोड़ना है। लेकिन आजकल लोग छिपाकर देने वाले कम हैं, छपाकर देने वाले ज्यादा हैं । देते कम हैं दिखाते ज्यादा हैं । भगवान के मन्दिर में पांच हजार रुपये का दान देगे और उसमें भी अपना नाम लिखवायेगे । आप मधुवन जाओ तेरापंथी या बीसपंथी कोठी में देखो, पांच-पांच सौ रुपये वाले के नाम जमीन में खुदे हुये हैं । लोगों से लतवा रहे हैं । यह एक दृष्टि है । कभी दान देते समय मान की चाह नहीं आनी चाहिए । यह एक बहुत बड़ी दुर्बलता है । यदि हम नाम की चाह में दान करते हैं तो थोड़ा सा नाम भर पाते हैं । पर यदि निरपेक्ष भावसे दान करते हैं तो पुण्य भी मिलता है और यश भी मिलता है । दोनों चीजें प्राप्त होती हैं पुण्य भी और यश भी । एकदम विशुद्ध भाव से हमने दान किया है तो वह परम्परा से मोक्ष में सहायक भी बन जाता है । दृष्टिकोण यही होना चाहिए तभी हम सच्चा लाभ उठा सकते हैं । अन्यथा केवल बातें ही बातें रह जाती हैं। हम काम नहीं कर पाते । हम देते कम हैं, दिखाते ज्यादा हैं । दूसरों के सामने जब दिखाने का मौका आता है तो एकदम बढ़-चढ़ करके देते हैं और एकान्त में कोई मांग ले तो पांच रुपये भी देने को हम सहज भाव से तैयार नहीं होते । यह हमारी दुर्बलता है । सीखना चाहिए । रहीम खानखाना एक बहुत बड़े कवि हुये । वे बड़े दानी थे, उदार थे, एकबार उनसे किसी ने पूछा, आप जब दान करते हैं तो उस समय आपकी आंखे एकदम झुकी रहती हैं, ऐसा क्यों ? दोहे के माध्यम से अपनी जिज्ञासा को प्रगट करते हुये रहीम खाना से पूछा गया -

सीखी कहां नवाब जी यो ऐसी दीनी देन ।

ज्यों ज्यों कर ऊँचों कियो, त्यों त्यों नीचा नैन ॥

आपने यह कहां से कला सीखी कि जितना आप दे रहे हैं, हाथ उठा रहे हैं देने के लिये, उतनी उतनी आपकी आंखें नीची हो रही है ? आखिर क्यों ? तो रहीम ने जो जवाब दिया वह उनके अन्दर की विनम्रता और उदारता की मिशाल बन गई । उन्होंने कहां -

देनहार कोई और है, देवत है दिन रैन ।
लोग भरम मोपै करें, तातें नीचे नैन ॥

छोड़ना उत्तम, छूटना अधम

समझ में आ गया । हम कौन हैं देने वाले ? यह सब तो विधि की एक व्यवस्था है और हम उसके एक छोटे से व्यवस्थापक । लेकिन क्या करें जब व्यवस्थापक ही अपने आपको मालिक मान बैठता है तो परिस्थितियाँ बिगड़ जाती हैं । जिस दिन तुम विधि की इस व्यवस्था में अपने आप को एक व्यवस्थापक मान लो, तुम्हारी आसक्ति उसी क्षण क्षीण हो जायेगी और जिस क्षण आसक्ति मिटेगी तुम्हारी दिशा व दशा दोनों परिवर्तित हो जायेगी । उसकी तरफ अपनी दृष्टि कीजिये । तो मैं आपसे कह रहा था कि दान की महिमा को समझें और दान करने का भाव मनमें जगायें लेकिन मान की चाह से मुक्त होकर । जितना आप लगायेंगे उतना पायेंगे । **तय करलो नहीं दोगे तो भी जायेगा, दोगे तो भी जायेगा पर कई गुना होकर वापस आयेगा ।** वह जाये या न जाये, तुम्हें तो जाना ही है यह तो पद्धति है फिर क्या मोह ? अगर अपने हाथ से छोड़ के जाओगे तो उसका सुख पाओगे और छुड़ा लिया जायेगा तो कष्ट पाओगे । आपने ख्याल किया किसी जरूरतमन्द को सौ रूपया देते हैं तो दिल में शान्ति होती है कि चलो आज मेरे रूपये किसी जरूरतमन्द के काम में आये और तुम्हारे जेब से यदि दस का नोट गिर जाता है तो मन में अफसोस होता है कि दस रूपये आज पानी में चले गये । मतलब क्या हुआ ? एक जगह हमने इच्छापूर्वक दिया तो संतोष आया और दूसरी जगह अनिच्छा से गया तो अफसोस आया । आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज ने इसे बहुत वास्तविक ढंग से समझाया है कहा कि छोड़ने और छूटने में बड़ा अन्तर है दोनों में इतना ही अन्तर है जितना कि सुबह से शौच से निवृत्त होकर फ्रेश होने से होता है और उल्टी होने में होता है । आप सुबह शौच करते हैं तो बिलकुल फ्रेश महसूस करते हैं क्योंकि छोड़ के आये हैं और कभी उल्टी हो जाये तो दिनभर जी मिचलाता है क्योंकि छूटा है । **जो छोड़ता है वह ताजगी पाता है और जिसका छूटता है उसका जी मिचलाता है ।** छोड़ोगे तो भी छूटना है और नहीं छोड़ोगे तब भी छूटना तो है ही । इस सिद्धान्त को जो जानता है

अपनी सम्पदा के सदुपयोग में वह कभी पीछे नहीं रहता । इसलिए जो सम्पत्ति है उसका सदुपयोग करें ।

सड़ जाता है कुंड भरा जल होता अगर नहीं निष्कर्षण

सम्पत्ति के तो तीन ही परिणाम हैं । दान, भोग या नाश । संत कहते हैं - **तुम अपनी सम्पत्ति का उपभोग करो और बचे का उपयोग करो ।** बस, इसके अलावा कुछ मत करो । संचित रखोगे विनष्ट होगा, नाश होगा । राजा भोज बहुत दानी था, उदार था । चाहे जिसको दान देता रहता था । उसके मंत्रियों ने उसे समझाने के लिये एक उपाय रचा और जहां से राजा रोज निकलता रहता था वहां संस्कृत का एक सूत्र लिख दिया - **'आपदार्थ धनम् रक्षे'** - मतलब आपत्ति के लिये धनकी रक्षा करें । राजा भोजने देखा । समझ लिया, यह मंत्रियों का एक सन्देश है । राजा भोज भी भोज ही थे । उनसे उसके नीचे दूसरा वाक्य लिख दिया **सताम् आपदा कुतः** - सज्जनों के जीवन में आपत्ति आती कहां है ? सज्जनों के लिये तो आपदा भी सम्पदा है । तो मंत्रियों ने लिखा - **'दैवात् क्वचित् समायाति'** - कर्म के योग से कदाचित् आपदा भी आ सकती है, इसलिए धन को संचित रखो । तो राजा भोज ने नहले पर दहला ठोकते हुये लिखा **संचितार्थम् विनश्यति ।** जो संचित धन है वह व्यर्थ हो जाता है । इसलिए जो है उसे लगा दो । रखो मत । बहुत गहरा सन्देश है । इसे हम समझें । सत् उपयोग हमेशा होना चाहिए । उसकी तरफ दृष्टि होनी चाहिए । एक कवि ने बहुत अच्छी बात लिखी कि सम्पदा के चार पुत्र हैं । दान, राजा, तस्कर और अग्नि । उनमें ज्येष्ठ पुत्र का अनादर होने पर शेष तीन नाराज हो जाते हैं । ज्येष्ठ पुत्र यानि दान का मान-सम्मान होने पर शेष तीनों संतुष्ट रहते हैं । मतलब क्या हुआ दान करो तो इनकम टैक्स वाले परेशान नहीं करेंगे । दान करोगे तो चोर-लुटेरे तुम्हारे यहाँ नहीं आयेंगे और दान करोगे तो कोई अशिकांड तुम्हारे यहाँ नहीं होगा । अगर नहीं करते, रोक-रोक कर रखते हो तो क्या भरोसा कब तुम्हारे यहाँ रेड पड़ जाये या कोई सरकारी चक्कर में उलझ जाओ । कब तुम्हारे यहाँ कोई डाका डाल दे, लूट-खसोट ले । अथवा कब कोई दुर्घटना घटित हो जाये । बहुत बोधप्रद बात है उसकी तरफ अपनी दृष्टि

बढ़ाइये और सदुपयोग करते रहने का भाव जगाईये। पुराने जमाने के और आज के लोगों में बड़ा अन्तर आ गया है।

सत्कार्यों में लगी सम्पदा, है निवेश आगामी भव का

पहले के लोग कम कमाते थे, बचाते ज्यादा थे। आज ज्यादा कमाते हैं कम बचाते हैं। बहुत अन्तर हो गया। पहले के लोग बचाये हुये धन का सदुपयोग करते थे, धर्म, संस्कृति और मानवता के कल्याण में लगाते थे। आज के लोग जो पैसा कमाते हैं वह केवल सुरा और सुन्दरी के चक्कर में लगाते हैं। अपने थोड़े से शान-शौकत के लिये हजारों रूपये पानी में बहा देते हैं। अभी ३१वीं की नाईट में एक-एक आदमी ने पांच-पांच हजार के टिकट लिये होंगे। क्या मिला तुम्हें? इतने देकर तो इन्ट्री की, ऐसा हमने सुना और वहां जाकर क्या किया वह तो भगवान ही मालिक है। जिनकी पाप बुद्धि होती है उनकी ही ऐसी प्रवृत्ति होती है। संत कहते हैं दुरुपयोग से बचो। पैसे का सदुपयोग करो। कुछ घंटों के आनन्द के पीछे हम पैसे को पानी की तरह बहाते हैं यदि उसी पैसे का सदुपयोग किसी गरीब का पेट भरने के लिये करते तो उसकी जो दुआएं मिलती वह सारी जिन्दगी को आनन्द से भर देती। वह दृष्टि नहीं। उससे बचिये। मैं आपसे कहना चाहता हूँ यदि तुम्हारी कमाई कम है तो अपने खर्च पर नियंत्रण करो। फालतू खर्च पर अंकुश लगाओ और जो बचे उसे दान पर लगाओ।

ध्यान रखना, **विषयों पर जो लगाया जाता है वह खर्चा होता है और सत्कार्य में जो लगाया जाता है वह बीज का वपन होता है।** खर्चा नहीं है वह। वह एक प्रकार से बोया हुआ बीज है जो कालान्तर में कई गुना फलेगा। दान में लगा हुआ द्रव्य कल्याण का कारण बनता है और भोगों में लगी हुई सम्पदा आत्मा को नरकों में ढकेल देती है।

करें विभाजन सम्पत्ति का, दूरदृष्टि को सम्मुख रखकर

तीन प्रकार के दाताओं का उल्लेख है उत्तम, मध्यम और जघन्य। कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आमदनी का एक निश्चित भाग निश्चित रूप से दान में

लगाना चाहिए। उत्तम दाता की चर्चा करते हुये कहा गया है कि उत्तम दाता वह है जो अपनी सम्पूर्ण आमदनी का चार भाग करता है। उसमें दो भाग से अपने और अपने कुटुम्ब का पालन करता है। तीसरे भाग को आपत्ति के लिये सुरक्षित रख लेता है और चौथे भाग को दान में लगाता है। मतलब 50% से अपना घर खर्च चलाता है, 25% सेविंग में डाल देता है और 25% दान में लगाता है। वह उत्तम दाता माना जाता है। मध्यम दाता वह है जो अपनी सम्पूर्ण आमदनी के छह भाग करता है। उसमें तीन भाग से अपने और अपने कुटुम्ब का पालन करता है। दो भाग आपत्ति के लिये सुरक्षित रखता है और एक भाग का यानि 17% या 17.25% का दान करता है। वह मध्यम दाता कहलाता है। जघन्य दाता वह है जो अपनी सम्पूर्ण आमदनी के दस हिस्से करता है। उसमें 60% से अपने और अपने कुटुम्ब का खर्चा चलाता है तीस प्रतिशत आपत्ति के लिये बचाता है और दस प्रतिशत का दान करता है। वह जघन्य दाता कहलाता है। इससे नीचे का दान करने वाला शास्त्र की दृष्टि से दातार नहीं है। इसका मतलब क्या है? तुम सौ कमाते हो 60 से ज्यादा खर्चने का अधिकार तुम्हें नहीं है। तुम्हारी कमाई कम है तो जितना कमाते हो उसको मत खर्चो 60 को ही खर्चो, तीस को आपत्ति विपत्ति के लिये बचाकर रखो और दस का दान करो। लेकिन आजकल तो उल्टा होता है दुनिया में ऐसे लोग ज्यादा हैं जो सौ कमाते हैं तो दस खा भी नहीं पाते और 90 बचाने की कोशिश में रहते हैं। क्या करोगे? इसका कोई लाभ नहीं है। यह दृष्टि यदि तुम्हारे मानस में बैठ जाये तो फिर तुम्हें ज्यादा उपदेश देने की जरूरत नहीं है। क्या करें? पैसा आता हुआ तो अच्छा दिखता है। जाता हुआ नहीं दिखता।

एक बार एक सेठ के पास लक्ष्मी और दरिद्रता दोनों आ गईं। दोनों में इस बात का विवाद हुआ कि हम दोनों में श्रेष्ठ कौन है? कौन अच्छी है? अब सेठ क्या करे? लक्ष्मी को अच्छी कहता है तो दरिद्रता नाराज हो जाती है और दरिद्रता को अच्छी कहता है तो लक्ष्मी नाराज हो जाती है। सेठ आपत्ति मोलना नहीं चाहता था। बहुत समझदार था। एक काम करो, मैं तुम्हारा फैसला बाद में करूँगा। पहले वह सामने जो पेड़ दिख रहा है वह छू कर के आओ, फिर मैं बताऊंगा कि तुममें कौन श्रेष्ठ है। दोनों गईं और एक साथ पेड़

को लू कर आ गई। अब सेठ क्या जवाब दे। उसने कहा - तुम दोनों अच्छी हो। लक्ष्मी से कहा - तुम जब आती हो तो अच्छी लगती हो और दरिद्रता से कहा जब तुम जाती हो तो अच्छी लगती हो। लक्ष्मी हमेशा आती हुई और दरिद्रता हमेशा जाती हुई अच्छी लगती है।

अर्थ-अनर्थ के बीच टंगा है, पतला पर्दा लालच का।

पैसा आने का हो तो आनन्द आता है और देने की बात आये तो पहले कौन आगे आये ? एक बार ऐसा हुआ, एक बड़ा कंजूस सेठ था। धन-सम्पदा की कोई कमी नहीं थी। लेकिन देने के नाम पर कभी किसी को एक पैसे का भी दान नहीं किया। उसकी पत्नी बड़ी धर्मपरायणा थी। ऐसे कंजूस सेठों की ऐसी ही पत्नियां ठीक रहती हैं। वे ही उन्हें रास्ते पर लगाती हैं। वह किसी भी तरीके से अपने पति को रास्ते पर लाना चाहती थी। एक दिन उनके नगर में किसी पहुंचे हुये संत का आगमन हुआ। उस दिन उनका प्रवचन भी दान पर ही होना था। बड़ा प्रभावपूर्ण प्रवचन होता था। वह श्रोताओं को एकदम मंत्रमुग्ध कर लेते थे। उनके प्रवचन का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता था। पत्नी ने सोचा, मेरे पतिदेव यदि आज प्रवचन में चले जायें तो काम हो जायेगा। आप लोग भी ऐसा ही सोचती हैं कि एक बार आ तो जायें महाराज के पास काम हो जायेगा। उसने पतिदेव से बड़ी अनुनय-विनय की। आप एक बार चलकर सुनो तो सही। अब क्या था ? पत्नी के प्रबल आग्रह पर पतिदेव प्रवचन सुनने चले गये। प्रवचन बड़ा प्रभावी हुआ। पत्नी पूरे प्रवचन में अपने पतिदेव के चेहरे के उतार-चढ़ाव को देख रही थी। उसे लगा, आज तो तीर निशाने पर लग गया। मन ही मन बड़ी प्रमुदित हो रही थी। जैसे ही प्रवचन पूरा हुआ, प्रवचन की प्रतिक्रिया जानने के लिये पत्नी ने पति से पूछा, कैसा लगा आज का प्रवचन ? पति ने कहा, बहुत अच्छा। पत्नी एकदम हर्षित हो उठी। कह उठी फिर क्या निर्णय है ? फिर क्या विचार है ? पति ने कहा आजके इस प्रवचन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि दान से श्रेष्ठ पुण्य का कोई कार्य नहीं। आज मैंने यह निर्णय ले लिया है कि कल से ही मैं दान मांगने का पुनीत कार्य प्रारम्भ करके लोगों को यह पुण्य का अवसर प्रदान करना चाहता हूँ। देने का नहीं मांगने का पुण्यकार्य। भैया, आप भी मेरे इस प्रवचन

से प्रभावित होकर ऐसा पुण्य का कार्य प्रारम्भ मत कर देना। यह स्थिति मनुष्य की है। पर बन्धुओ, जो जीवन के मर्म को समझते हैं वह अपनी जिन्दगी में ऐसी गलती कभी नहीं करेंगे। हम अपने द्रव्य का सदुपयोग करें। उनका लाभ उठायें। खुद लाभ लें और दूसरों को भी लाभ लेने का अवसर प्रदान करें तब हम अपने जीवन का कल्याण कर सकते हैं। बन्धुओ, गृहस्थों के षट् कर्तव्यों में जो दान को रखा गया है उसके पीछे यही प्रयोजन है।

अब प्रश्न उठता है दान किसको दें ? कहां दें ? जैनाचार्यों ने दो प्रकार के दान की बात कही है। एक है पात्र दान और दूसरा है करुणा दान/ सामाजिक दान।

पात्र दान के अन्तर्गत तीन प्रकार के पात्र आते हैं - उत्तम, मध्यम और जघन्य। उत्तम पात्र मुनि होते हैं। आर्यिका, ऐलक, क्षुलुक और श्रावक मध्यम पात्र में आते हैं और सामान्य गृहस्थजन जघन्य की कोटि में आते हैं। इसको जो दान दिया जाता है वह पात्र दान की भावना से दिया जाता है। यह दान हमारी आत्मा की पात्रता को बढ़ाने वाला है। आहार, औषधि, अभय और ज्ञान दान के भेद से चार प्रकार का दान है। यह दान विधिपूर्वक दिया जाता है। पात्र को दिया गया दान है। इस दान से न केवल पुण्य का अर्जन होता है बल्कि परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति भी होती है। इसकी अपनी महिमा है यथा अवसर सत्पात्र का सान्निध्य पाकर दान देने से सातिशय पुण्य का बन्ध होता है।

सम्यग्दृष्टि का यह दान उसे परम्परा से मुक्ति का पात्र बना देता है। आचार्य समन्तभद्र महाराज ने पात्र दान की महिमा बताते हुये कहा कि -

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।

अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥ ११४ ॥ - रत्नक.श्रावका.

आगे कहते हैं कि विधिपूर्वक यदि हमने किसी सत्पात्र को दान दिया है तो वह कालान्तर में वैसे ही फल पाता है जैसे कि धरती में कोई बीज बोते हैं तो वह बीज भविष्य में विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। उसमें खूब शीतल छाया होती है और मीठे फल-फूल लग जाते हैं। ऐसे ही सत्पात्र के लिये दिया गया थोड़ा सा दान पुण्य का बीज बनकर हमारी आत्मा के लिये बरगद की तरह फलवान बन जाता है। यह पात्र दान

की महिमा है आगे और कहते हैं गृहत्यागी मुनिराजों के लिये दान देने पर दिनभर के घर-गृहस्थी के कार्य से जो पाप अर्जित होता है वह सत् पात्रों को/ सत्गुरुओं को आहार देने मात्र से; एक ग्रास देने मात्र से वैसे ही प्रक्षालित हो जाता है जैसे कि पानी से खून की धारा साफ हो जाती है। इतनी बड़ी महिमा है। इसको हम समझें और इसका लाभ उठायें। पर वह भी विधिपूर्वक देना। अव्यवस्था से नहीं, भगदड़ से नहीं।

है अचिन्त्य महिमा सुदान की

कभी आपसे चर्चा करूँगा, आहार देने में तो आप लोग बहुत आतुर होते हैं लेकिन आहार देना ही आप जानते हैं उसके आगे-पीछे का आप नहीं जानते। फिर कभी चर्चा करूँगा। यह पात्र दान की बात है। यदा-कदा जब सौभाग्य से सुपात्र मिलें तो उन्हें भक्तिभाव से दान दो।

पात्रदान के अन्दर ही धर्मायतन आदि का निर्माण होता है। जिनपूजा के निमित्त जो क्रियायें हम करते हैं, वे सब पात्रदान के अन्तर्गत आती हैं। यह सब विशेष पुण्य के कारण हैं। इनका अपना उपयोग है, लाभ है।

नहीं सूखता कूप जल, गर छिपी दान की धारा है

दूसरी तरफ है सामाजिक दान। जो एक प्रकार से करुणा दान के अन्तर्गत आता है। करुणा बुद्धि से दिया जाता है। दीन-दुखी जीवों की सेवा के लिये, उद्धार के लिये जो अपने द्रव्य का उपयोग होता है वह सब करुणा दानके अन्तर्गत आता है। अपनी सम्पत्ति का उपयोग इन कार्यों में भी करना चाहिए। कोई पीड़ित है, दुःखी है, भूखा हो, प्यासा हो, अभावग्रस्त हो, संकटापन्न हो उस दशा में यदि तुम्हारे पास सामर्थ्य हो तो अपनी सम्पत्ति का एक भाग जरूर दे देना। उसमें चूकना मत। यह भी हमारा एक बड़ा कर्तव्य है। जो सच्चा धर्मात्मा होता है, वह ऐसे अवसरों को जीवन की महानतम घड़ियों में गिनता है और कभी ऐसे कार्यों में पीछे नहीं हटता। बन्धुओं में आपसे कह रहा था कि सम्पत्ति आपकी आज नहीं तो कल तो जायेगी ही, इसलिए सदुपयोग करलो। जैसे आप

कमा रहे हैं वैसे ही खर्चना भी सीखो। केवल कमाओगे? कमाओगे तो सब गंवाकर चले जाओगे। और कमाते कमाते देते जाओगे तो जाते-जाते बहुत कुछ बचा पाओगे। अपने लिये कुछ अर्पित कर पाओगे। उस तरफ अपनी दृष्टि हमेशा केन्द्रित रहनी चाहिए। जिस मनुष्य की ऐसी दृष्टि और पवित्र भावना बनी रहती है उसका सुनिश्चित रूप से उद्धार हो जाता है। **ऐसा हमारा प्रयास हो यह मानकर के चलें कि सम्पदा उसकी नहीं जिसके पास वह है सम्पदा तो उसकी है जो उसका सदुपयोग करता है।**

दूसरी बात, सम्पदा देने से कभी घटती नहीं। आप यह भ्रम मत करना कि मैं दौलत दूंगा तो मेरी दौलत घट जायेगी। तुम जितना दोगे उतना पुनः आयेगा। कुंए से पानी निकालो, जब तक उसका स्रोत अमर है तब तक कुंआ सूखता नहीं।

**चोंच भर ले गई, नदी, चिड़ी न घट्यो नीर।
देता दौलत ना घटे, कह गये दास कबीर ॥**

यह समझिये। बड़ी प्रबल प्रेरणा है इनमें। इसे समझ कर यदि हम आत्मसात कर लें तो सब हो जायेगा।

काश ! यह कथा हमारी होती

मेरे सम्पर्क में ऐसे लोग आये हैं जो जी खोल कर दान देते थे। दुर्ग में एक बड़े उदारमना श्रावक थे। मिल वाले बाबूलाल जी। बहुत पैसे वाले थे, बहुत उदार, करोड़पति होने के साथ उनकी उदारता देखते बनती थी। दानशीलता उनके जीवन का अंग थी। बड़े सहृदय व्यक्ति थे। अमरकण्टक में जो प्रतिमा विराजमान होनी है उसका पुण्यार्जन उन्होंने किया। मेरे प्रति उनका बड़ा अनुराग था। जब आचार्य श्री अमरकण्टक में पहली बार पहुंचे तो प्रथम दिन उनके चौके में आहार हुआ। आहार के उपरान्त वह मेरे पास आये और कहा कि महाराज, आज अमरकण्टक में गुरुवर के आहार हुये पहले दिन मेरे चौके में आहार हुये तो मेरे मन में यह भाव आया कि अबतक मेरे पास यूनिट का 10 %का दान का नियम था। आजसे मैं यह संकल्प ले रहा हूँ कि जय श्री राईस मिल जिसका प्रोप्राइटर भी मैं हूँ मैं आज से 15% दान दूंगा। मैंने कहा - अच्छा जाओ, आचार्य श्री से

आशीर्वाद ले लो। बोले - इतनी सी बात महाराज श्री से क्या कहना ? मैं उनका मन टटोलना चाह रहा था। हुआ यह था कि वहां किसी मद के लिये लोग पैसे एकत्रित कर रहे थे तो उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था। उन्होंने कहा - कितना लग रहा है। लोगों ने कहा... इतना लग रहा है, इतने का कोटेशन है। उनसे कहा - चलो मुझसे ले लो। मैंने उनसे कहा - आप इतना सब खर्चा करते हैं, आपको फर्क नहीं पड़ता ? बोले - महाराज क्या फर्क पड़ता है ? मैं लेकर क्या आया हूँ जो लेकर जाऊंगा ? उनकी जो प्रतिमा थी, शुरुआत में उसकी लागत 20 लाख अनुमानित थी जो बाद में बढ़कर ढाई गुना हो गई। मैंने कहा आपका इतना व्यय बढ़ गया। बोले महाराज, जिस दिन मैंने मूर्ति विराजने की भावना की थी। उस दिन मैंने सोच लिया था कि मेरी सारी सम्पत्ति के पांच हिस्से हो जायें और एक हिस्सा मुझे मिल जाये। चार हिस्से मेरे बेटे ले लें तो भी मेरे भगवान बन जायेंगे। उन्होंने कहा, महाराज, देने से घटता नहीं। मैं जब गुरुवर से जुड़ा था, दुर्ग से जबलपुर तक छोड़ने गया था तो मेरे पास केवल 2 यूनिट थी, आज बढ़कर 4 यूनिट हुई। उस समय मैं कम देता था आज ज्यादा देता हूँ। जैसे-जैसे देता हूँ वैसे-वैसे आता है। और महाराज जब जाना होता है तब जाता ही रहता है। हमारे व्यापार में तो रोज नफा-नुकसान होता रहता है। जब वहां पैसा जाता है तब यहां पैसा जाने में क्या बुराई है ? कारोबारिक नफा-नुकसान आपलोग झेलते हैं कि नहीं झेलते ? दृष्टिकोण रखो देने से कभी घटता नहीं। जब तक तुम्हारा संयोग अनुकूल है तुम दोनों हाथों से लुटाना। मैं तो आपसे कहना चाहता हूँ, फालतू खर्च पर कटौती कीजिये और अपनी सम्पत्ति को बचाकर सदुपयोग कीजिये। सत्पात्रों को तलाश तलाश कर दीजिये। व्यर्थ के कार्य में/फालतू की शान में जो हमारी पैसे की बरबादी होती है उसको रोकिये। हम थोड़ी-थोड़ी बातों के पीछे हजारों रूपये ऐसे ही बरबाद कर डालते हैं। जो हमारी आत्मा की बरबादी का कारण है उसका सदुपयोग करना सीखिये। अपने संचित धन के एक-एक रूपये का सदुपयोग कीजिये और घबराइये मत, आना-जाना लगा रहता है।

अशुभ में भी शुभ का उद्यम

सेठ हुकुमचंदजी के बारे में आपने सुना होगा ? बड़े उदारमना व्यक्ति थे वह।

जैन समाज के तो स्तम्भ थे। एक बार व्यापार में उनको कुछ नुकसान हुआ। उनका कपास का काम था। प्रतिदिन भाव हुकुमचंद जी के द्वारा खोला जाता था और यह कहा जाता था कि आज का रेट यह, कल का रेट हुकुमचंद जानें। जिसके नाम से बाजार के भाव खुलते थे, धन्य है वह हस्ती। एक बार उनको कुछ नुकसान हो गया तो उनकी पत्नी कंचनबाई ने उनसे कहा - देखो, अशुभ का उदय है रूपया जा रहा है, कुछ काम कर लो। नहीं तो ऐसे ही जाना है सो जायेगा। घाटे के समय में भी उन्होंने तीन लाख रूपये निकाल करके कंचनबाई प्रसूतिका गृह का निर्माण कराया। वह उनकी पत्नी की प्रेरणा थी। पत्नी कह रही है पैसा जा रहा है। उधर जा रहा है सो इधर जायेगा सो अच्छी जगह लगाना। यह एक दृष्टिकोण है।

दूसरा कोई होता तो नुकसान के समय बोलता भैया हाथ-पांव बांध लो। अरे यह सोचो, पापोदय से नुकसान हो रहा है, पुण्य बढ़ाओगे तब तो बैलेन्स बनेगा। हम बचाना चाहते हैं लेकिन जब पापकी तीव्रता होगी तो तुम कितना भी बचाना चाहो, तुम्हारी जेब का पैसा कहां निकल जायेगा पता नहीं चलेगा ? इस सिद्धान्त को समझिये और अपने जीवन को उसी अनुरूप ढालने की चेष्टा कीजिये। तब ही हम अपने जीवन में कुछ शाश्वत उपलब्धि घटित कर पायेंगे।

किसके चरण दबाती लक्ष्मी ?

एक बहुत बड़ा सेठ था, अपार धन-सम्पदा का स्वामी था, लेकिन बड़ा कंजूस था। उसका चित्त बड़ा अनुदार था। उसके पड़ोस के नगर में एक सेठ था जिसके पास सम्पत्ति तो अपेक्षाकृत कम थी लेकिन उसका बड़ा यश था, बड़ा नाम था। कारण यह था कि जितनी उसके पास सम्पत्ति थी उससे बड़ा उसका दिल था। बड़ा उदार था। वह दीन दुखियों की सेवा में हमेशा तत्पर रहता। वह मानवता का मसीहा माना जाता था। सेठ को लगा, दौलतमन्द तो मैं भी हूँ लेकिन फिर भी लोग मेरी इज्जत नहीं करते उसकी इज्जत करते हैं इसका रहस्य क्या है ? वह दूसरे नगर के सेठ से मिलने गया। सेठ ने उसका आत्मीय स्वागत किया। कहा आप ठहरिये, मेरे यहां रहिए। रात दोनो एक कक्ष में रहे। अचानक दरवाजे पर आहट हुई। देखा, एक षोडश वर्षीया सुन्दरी आई और उसने

सेठ के चरणों को दबाना शुरू कर दिया। ठीक रात के बारह बजे। आगन्तुक सेठ को यह बहुत नागवार लगा। सोचा, मैं तो इस सेठ की इतनी इज्जत और आदर करता हूँ, दुनिया में इसकी बड़ी ख्याति है पर यह तो बड़ा अय्याशी और व्यभिचारी है रात के बारह बजे किसी सुन्दरी के साथ इस तरह का कृत्य ? दूसरे के सामने पांव दबा रहा है, वह भी बुढ़ापे में। उसको अच्छा नहीं लगा। रात भर साधे रहा अपने आपको। वह सुन्दरी सेठ के पाँव दबाती रही। सेठ नींद में था। पता नहीं, वह कब चली गई, पर इनकी नींद खराब कर गई।

अगले दिन उसने सेठ से कहा सेठ साहब, यह बात अच्छी नहीं लगी, यह सब क्या था ? सेठजी ने कहा क्या बताऊँ, वह मानती नहीं, क्या करूँ ? क्या करूँ ? वह मानती नहीं। वह कौन है ? रोज आती है ? बोले - हाँ आती है लक्ष्मी है। लक्ष्मी है ? बोले हाँ लक्ष्मी है। क्या कहती है ? कहती है - आप लक्ष्मीपति हैं, मैं आपके पाँव दबाऊंगी। मैं मना करता हूँ फिर भी वह रोज-रोज आकर के पाँव दबाती है, मानती नहीं क्या करूँ ? बात तो सही है। जो लक्ष्मीपति होगा लक्ष्मी उसके पाँव नहीं दबायेगी तो क्या करेगी ? उसने सोचा, मेरे यहां भी आती होगी पर दरवाजा बंद देख कर लौट जाती होगी। वह घर आया और सब दरवाजे खोलकर बैठ गया। बारह बजने की प्रतीक्षा में था। रात ठीक बारह बजे लक्ष्मी आयेगी और मेरे पाँव दबायेगी क्योंकि मैं भी लक्ष्मीपति हूँ। अब जैसे ही हल्की सी आहट हो एकदम चौकन्ना हो जाता। कभी-कभी दरवाजे तक जाता, देखता आ रही है या नहीं आ रही है। जब कोई आता नहीं दिखता तो वापस निराश होकर लौट जाता। जैसे-जैसे घड़ी के कांटे आगे बढ़ रहे थे, उसकी धड़कन भी तेज हो रही थी। बार-बार देखता कहीं लक्ष्मी आ तो नहीं गई। आ तो नहीं गई। ठीक बारह बजे दरवाजे पर आहट हुई उसने देखा एक विकराल सी स्त्री खड़ी थी, उसके हाथ में खंजर था और आकृति एकदम विकराल। सेठ ने देखा तो कांप गया। लड़खड़ाते स्वरो में उसने पूछा, तु...म कौन हो ? स्त्री ने उसके सिरके बाल पकड़ते हुये कहा कि मैं लक्ष्मी हूँ। सेठ चकराया, तुम लक्ष्मी ? तुम्हें तो मेरे पैर दबाने चाहिए। लक्ष्मी ने उसके बालों को और जोर से खींचते हुये कहा- सुनो, मैं लक्ष्मी हूँ मैं पैर उसके दबाती हूँ जो मेरा सदुपयोग करता है। जो मेरा

सदुपयोग करता है उसे पति मानकर मैं उसके रोज पैर दबाती हूँ और जो मेरा दुरुपयोग करता है उसे दास मानकर उसके बाल पकड़ती हूँ उसके लिये मेरा यह खंजर है। सेठ की आंखे खुल गईं। इस बात को समझिये। यह सच है। सम्पदा केवल उसकी ही होती है जो उसका सदुपयोग करता है जो इसका दुरुपयोग करते हैं वह उनके पास कभी नहीं रहती। दान की इस महिमा को समझें और आज से ही सदुपयोग करें ? दान मांगने का काम शुरू कर दें ऐसा नहीं। अपनी शक्ति के अनुसार दान देने का संकल्प लें। जहां आवश्यकता है वहां दें।

भरे में क्या भरना ?

एक बात और ध्यान रखें हमारी एक गलती होती है, हम भरे को भरते हैं, खाली को नहीं भरते। भरे को मत भरो। खाली को भरो। जहां जरूरत हो वहां दें। यह बात शायद आप लोगों को खराब लगेगी फिर भी मैं कह रहा हूँ। हमारे यहां मंदिरों में पैसा देने का बहुत चलन है, देना चाहिए। पर आप यह जरूर देखें कि उसका उपयोग कितना होता है ? लाखों रूपये मन्दिरों के गुल्लकों से निकलता है पर उसका उपयोग क्या होता है ? मन्दिर की पूजा-प्रक्षाल के, मन्दिर के रख-रखाव के लिये यदि रूपयों का उपयोग हो तो बात समझ में आये, बाकी वह पैसा कहां जाता है ? बाकी जगह तो हुंडियों में चलता रहता है। **यदि हमारे मंदिर में ऐसी व्यवस्था बना दी जाये कि हर मन्दिर के गुल्लक में जो पैसे हैं उसका उपयोग मन्दिर की पूजा-प्रक्षाल, रख-रखाव आदि के लिये होगा और जो बचेगा उसे हम पिछड़े मन्दिरों में लगायेंगे तब वह तुम्हारा सदुपयोग है।** यदि ऐसी व्यवस्था नहीं है तो वह पैसा अपने घर में संचित करके रखना और उसे उन पिछड़े मन्दिरों के लिये लगाना जहां रोज पूजा-प्रक्षाल की व्यवस्था बनी रहे। वहां तुम्हारे धन का ज्यादा सदुपयोग होगा। और एक बात और करना चाहता हूँ जिनके हाथों में मन्दिरों का प्रबन्धन है वे इसको बहुत अच्छे से सुनें। जिस दाता ने गुल्लक में रूपया डाला वह हुंडी में लगाने के लिये नहीं डाला। उसने अपनी हुंडी से निकाल कर के डाला है। यदि तुम उसका दुरुपयोग करते हो तो पाप के भागीदार भी तुम होओगे। यह अपने को सोचना है शास्त्र सम्मत दृष्टि से सोचना है। आपस में विचार

विमर्श करें। सदुपयोग करें। जहां उसकी जरूरत हो उसको लगायें। मन्दिर में आने वाला शुभभाव से दान करता है लेकिन क्या करे, अपरिग्रही भगवान की व्यवस्था जबसे परिग्रही व्यवस्थापकों ने ले ली है, भगवान को भी परिग्रही बना दिया। हम जोड़-जोड़ कर रखते हैं। क्यों? क्या तुम्हें अपनी आने वाली पीढ़ी पर अविश्वास है कि आने वाली पीढ़ी पूजा-प्रक्षाल नहीं करेगी। जब तक तुम्हारी पीढ़ियों की श्रद्धा कायम है तब तक भगवान की पूजा होती रहेगी और जिस दिन श्रद्धा खत्म हो जायेगी उस दिन पूजा की आवश्यकता भी नहीं रह जायेगी।

इस सूक्ष्म पाप के हम भी भागी

पूज्य और पूजक का सम्बन्ध तो केवल श्रद्धा से है इसलिए कल की चिन्ता नहीं करो। भगवान तो कहते हैं तुम अपने कल की चिन्ता करो, तुम्हारे तो बाल-बच्चे हैं। भगवान के तो कोई बाल बच्चे नहीं, उनके कलकी चिन्ता क्यों कर रहे हो? किसलिए रखते हो? यह डिपाजिट करने की प्रवृत्ति क्या है? **थोड़ा सूक्ष्मता से सोचिए। आपका सारा पैसा बैंक में जाता है। बैंक किसको फाइनेंस करती है बूचड़खाने को करती है, शराब की कम्पनियों को करती है। उनके सारे पाप का पैसा, उसके ब्याज को आपको देती है और ब्याज के पैसे से आप भगवान का अभिषेक करते हैं। थोड़ा विचारिये, यह सूक्ष्म पाप आपके पल्ले पड़ता है कि नहीं?** हम तो कहते हैं रखो ही नहीं, जितना है सब लगा दो। भगवान अपरिग्रही हैं, भगवान के मन्दिर को भी अपरिग्रही बना करके रखो। जिस मन्दिर में ज्यादा रुपया नहीं होता वहां के चुनाव में ज्यादा झगड़ा नहीं होता। झगड़ा तो केवल इसका है। यह बात यथार्थ है बन्धुओ इस बात पर पूरी जैन समाज को चिन्तन करना चाहिए। यदि देश भर के लोग इस मुद्दे पर गम्भीरता से विचार करें तो हमारा कोई क्षेत्र पिछड़ा नहीं बचेगा। हमारा कोई मन्दिर ऐसा नहीं बचेगा जहां उजाला न होता हो और जहां ढंग से पूजा-अर्चा नहीं होती हो। करना कुछ नहीं। केवल एक नई सोच प्रकट करने की बात है। सोचिये, मेरा काम केवल उपदेश देने का है। व्यवस्था आपके हाथ में है। लेकिन बन्धुओ, रास्ता मैं आपको बता सकता हूँ। चलना, नहीं चलना आपकी मर्जी। इस पर सोचें। यह नहीं सोचें

कि हम यहां का पैसा वहां कैसे दें? भगवान तो वही हैं। चाहे वहां के हों चाहे यहां के। भगवान हमारे तुम्हारे थोड़े ही हैं। लगता है कि, हमारा पैसा वहां लगा दिया। यानी भगवान भी हमारे तुम्हारे हो गये। हमने औरों को बांटा सो बांटा, भगवान को भी बांट लिया। यह गलत है इसलिए मैं कहता हूँ, भरे को मत भरो। जहां जरूरत हो वहां दो। जहां जरूरत है वहां दिल खोलकर लगा दो और जहां जरूरत नहीं वहाँ एक पैसा मत दो।

दान वहीं करो, जहाँ उसकी उपयोगिता हो। जैसे उत्तम भूमि में बोया गया छोटा-सा भी वटबीज विशाल वटवृक्ष का रूप धारण कर लेता है। उसी तरह सत्य मन से दिया गया अल्पदान भी महान फलदायी होता है। अतः दान की अपने जीवन का कल्याणकारी अनुष्ठान मानकर सदैव शक्ति के अनुसार उत्साहित होना चाहिए। इसी भावना के साथ विराम लेता है।

